ISSN: 2395-7852

International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management

Volume 10, Issue 2, March 2023

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

Impact Factor: 6.551

+91 9940572462 +91 9940572462 ijarasem@gmail.com www.ijarasem.com

International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551| Peer Reviewed & Referred Journal |

| Volume 10, Issue 2, March 2023 |

हादसे-रमणिका गुप्ता

Nirmal Suwasiya

Research Scholar, Mohan Lal Sukhadiya University, Udaipur, Rajasthan, India

सार

रमणिका गुप्ता

जन्म : 22 अप्रैल, 1930; सुनाम (पंजाब)।

शिक्षा : एम.ए., बी.एड.।

रमणिका गुप्ता बिहार/झारखंड की विधायक एवं विधान परिषद् की सदस्य रहीं। कई ग़ैर-सरकारी एवं स्वयंसेवी संस्थाओं से सम्बद्ध तथा सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनैतिक कार्यक्रमों में सहभागिता। आदिवासी, दलित, महिलाओं व वंचितों के लिए आजीवन कार्यरत। कई देशों की यात्राएँ। विभिन्न सम्मानों एवं पुरस्कारों से सम्मानित जिनमें 'गणेश शंकर विद्यार्थी पुरस्कार' , 'आजीवन आदिवासी बंधु पुरस्कार' भी शामिल हैं।प्रकाशित कृतियाँ : अब तक 16 कविता-संग्रह, दो उपन्यास, दो कहानी-संग्रह, दो कहानी-संग्रह सम्पादित, एक यात्रा-संस्मरण और दो आत्मकथा– 'आपहुदरी' व 'हादसे' ।

परिचय

रमणिका गुप्ता

हादसे

इस आत्मकथा को स्त्री के अपने चुनाव की कहानी भी कहा जा सकता है। पटियाला के बड़े मिलिटरी अफ़सर की ज़िद्दी और अपने मन का करनेवाली लड़की जो अपनी हरकतों से बार-बार बाप और उनके परिवार को असुविधाओं में डालती है, खुली मीटिंगों में उनके सामन्ती दोमुँहेपन पर प्रहार करती है, विभाजन की त्रासदी झेलती मुस्लिम महिलाओं की आवाज़ बनकर जवाब माँगती है और फिर अपने मन से क्षत्रिय (राजपूत) परिवार छोड़कर अन्य जाति के लड़के (गुप्ता) से शादी करके बिहार (झारखंड समेत) चली आती है। यहाँ आकर पति से विद्रोह करके मज़दूरों-कामगारों के बीच उनके संघर्ष का जीवन चुनती है।इस आत्मकथा को सामन्तवाद और लोकतन्त्र के खुले द्वन्द्व की तरह भी पढ़ा जा सकता है।[1]इन्हीं तूफ़ानी झंझावातों से गुज़रकर आई है रमणिका गुप्ता। आर्य समाज, कांग्रेस, समाजवादी और कम्युनिस्ट होने की उनकी यह यात्रा भारतीय राजनीति के नाटकीय मोड़ों का इतिहास भी है और विकास भी। स्त्री को सदा से पुरुष की अनुगामिनी बनकर जीवन जीने की शिक्षा दी जाती है। स्त्री का लक्ष्मण रेखा लाँघना समाज के तथाकथित पहरेदारों की बर्दाश्त से बाहर होता है।औरत अगर खुदसर हो तो उसकी मुख़ालफ़त लाज़िमी होती है और अगर कहीं राजनीति में हो और वह भी लता बनकर नहीं बल्कि पेड़ या खूँटा बनकर तो उसे हिला देने की तरकीबें, झकझोर देने के ढंग, उखाड़ देने के प्रयास इन्तहा पर पहुँच

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551| Peer Reviewed & Referred Journal |

| Volume 10, Issue 2, March 2023 |

जाते हैं। अगर वह ट्रेड यूनियन में हो, वह भी सफ़ेदपोशों की यूनियन में नहीं बल्कि स्वयं वर्गहीन होकर खाँटी खटनेवाले ब्लू कॉलर कोयला[2] मज़दूरों के बीच रहकर उन्हें संगठित कर आन्दोलित करने का दम रखती हो, तब तो 'युद्ध और प्रेम में हर चीज़ जायज़ है' का फ़ॉर्मूला लागू करने में सहयोगी, सहभागी- यहाँ तक कि प्रशंसक भी देर नहीं लगाते- दुश्मनों का तो कहना ही क्या ! हाँ, दुश्मनों का ! ऐसी औरत के दुश्मन खड़े हो जाते हैं। दुश्मनी इसलिए नहीं होती कि उससे कुछ नुकसान पहुँचेगा, वह समान कारण तो स्त्री-पुरुष दोनों पर ही लागू होता है- दुश्मनी इसलिए कि एक औरत ने इतने लोगों का विश्वास कैसे प्राप्त कर लिया- बिना उनकी मदद के यह कैसे संभव हुआ ! ज़रूर दाल में कुछ काला है ! यह डाह ही दुश्मन खड़ा कर देती है। तब ऐसी औरत के खिलाफ़ बहुत सी 'कनफुसकियाँ', अफ़वाहें, चटपटी प्रणय कथाएँ, झूठे-सच्चे किस्से हवा में तैरने लगते हैं। पुरुष औरत को उसी हालत में बर्दाश्त करता है, जब उसे यह यकीन हो जाए कि वह पूरी तरह उसी पर आश्रित है और ख़ुद कोई निर्णय नहीं ले सकती[3] या फिर वह स्वयं उस औरत से डरने लगे, तो वह उसे सहता है। पुरुष के मुकाबले में कोई पुरुष हो तो उन्हें अपनी क्षमता का फ़र्क उन्नीस या बीस ही नज़र आता है लेकिन अगर औरत खुदमुख्तार होकर सामने खड़ी हो जाए, वह भी निर्णय ले सकनेवाली औरत, तो चाहे बिन चाहे वह हीन-भावना से दब जाता है और उसे अपनी तुलना में वह औरत बाईस लगने लगती है।ईर्ष्यावश शत्रुता का अंकुर मन में जन्म लेता है। वह समझता है कि औरत के पास उसके समान गुणों के अतिरिक्त आकर्षित और प्रभावित करने की क्षमता अधिक होती है और इसे ही वह अपने पौरुष के लिए चुनौती मान बैठता है। अत्यंत प्रेम और समर्पण के क्षणों में भी पुरुष अपने निर्णय को अन्तिम साबित करने की ज़िद करता है। रमणिका गुप्ता बचपन से ही राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तन की धारणा से जुड़ी रहीं।[4] जब पाँचवी-छठी कक्षा में पढ़ती थीं, तब 'सत्यार्थ प्रकाशन' के समर्थन में तथा मूर्ति-पूजा के विरोध में घंटों बहस करती थीं। इन्हीं बहसों के कारण उन्होंने विक्टोरिया स्कूल की अपनी प्रधानाचार्या से बहुत डाँट खाई थी। वे अपने निर्णय स्वयं लेती थीं तथा उनका अच्छा-बुरा फल भोगने को सदैव तैयार रहती थीं।[5]

स्त्री लेखन में राजनीति और राजनीति में स्त्री की सक्रिय सहभागिता का इतिहास भारत में बहुत पुराना नहीं है। स्त्रियों ने विविध साहित्यि क विधाओं में देश के स्वतंत्रतापूर्व और पश्चात की राजनीति को एक अलग नज़रिए के तहत व्याख्यायित एवं विश्लेषित किया है। राजनीति में जिन हिन्दी लेखिकाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही उसमें रमणिका
गुप्ता का नाम सबसे अधिक प्रचलित है। पंजाब के संभ्रांत परिवार में पैदा होने वाली रमणिका गुप्ता की कहानी महज़ एक ऐसी स्त्री की क हानी नहीँ जिन्होंने भारतीय राजनीति में पूरी प्रखरता और साहस के साथ भागलिया बल्कि राजेन्द्र यादव की भाषा में "उनकी यह यात्रा भार तीय राजनीति के नाटकीय मोड़ों का इतिहास भी है और विकास भी।[6]

"रमणिका गुप्ता की आत्मकथा
हादसे' (2005) भारतीय राजनीति के ऐसे दस्तावेज़ हैं जिसमें राजनीतिक संघर्ष, षड्यन्त्र और उसकी सत्तावादी प्रवृतियों का यथार्थ पूरी प्रख रता से चित्रित हुआ है।[7]

राजनीतिक भागीदारी से अभिप्राय केवल 'मताधिकार' से नहीं है वरन इसके अंतर्गत राजनीतिक चेतना, सक्रियता एवं निर्णय ले ने की स्वतंत्रता भी शामिल है। संविधान द्वारा मताधिकार पाने के बाद भी भारत की संसदीय राजनीति में महिलाओं की भागीदारी कम रही । राजनीति में जिन महिलाओं की भूमिका थी वे या तो पहले से किसी राजनीतिक संभ्रांत परिवार का हिस्सा थीं या स्वतंत्रता पूर्व से ही आं दोलनों के ज़रिए राजनीति में सक्रिय थी। मध्य एवं उच्च वर्गीय स्त्रियाँ अभी अपने आधारगत अधिकारों के लिए ही संघर्षरत थी। इन परिद श्यों में पंजाब की एक लड़की का बिहार में बतौर राजनीतिक कार्यकर्ता उभरना और मुख्यधारा की राजनीति में आना, संघर्ष की अपराजे य गाथा है। भारतीय राजनीति का लोकतान्त्रिक स्वरूप जनता के हित का दावा करता है फिर भी उसकी सबसे बड़ी विडंबना है कि उस में उसी सामान्य जनता का प्रतिनिधित्व नाममात्र होता है विशेषकर अगर वह स्त्री हो तो। इस विडंबना को रेखांकित करते हुए राजेन्द्र याद व लिखते हैं "उत्तर भारतीय राजनीति में स्त्री की स्थिति क्या है? क्या खेतों, खलिहानों, खदानों और आदिवासियों के बीच ज़मीनी लड़ाइयों से उठकर भी वह शीर्ष पर आ सकती है। इंद्रा जी नेहरू जी की बेटी हैं और पद प्रतिष्ठा उन्हें विरासत में मिली है।[8] कितना आसान है कि आज सोनिया और प्रियंका गांधी फिर केंद्र में आ जाएं। अगर वे ठेठ ज़मीन से उठी होती तो कितना ऊपर जा सकती थी।" राजनीति में प रिवारवाद का होना उसके लोकतान्त्रिक स्वरूप का उपहास है लेकिन भारतीय राजनीति में यह कटु यथार्थ है कि कोई भी राजनीतिक द ल इससे पूर्णतः मुक्त नहीं है। एक प्रगतिशील अभिजात्य और संबल परिवार का हिस्सा होने के बावजूद भी रमणिका गुप्ता की राजनीतिक चेतना बहुत अलग थी। वह शुरू से सत्ता विरोधी थीं। 1946 में जब महात्मा गांधी ने नोआखाली के दंगों को लेकर आमरण अनशन शुरू किया तो रमणिका गुप्ता ने घर में ही अनशन शुरू कर दिया। पटियाला में गुमशुदा शरणार्थी लड़कियों की तलाश में रखी एक सभा में उ न्होंने भाषण देते हुए खुल कर कह दिया था [9]"ये जो यहाँ भाषण दे रहे हैं और लड़कियों को खोजने का आश्वासन दे रहे हैं सबके सब झूठ बोलते हैं। इनके घरों में ही तो लड़कियां हैं। इन्हीं लोगों के घरों में जाइए, एक–एक के यहाँ पाँच–पाँच, दस-

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551| Peer Reviewed & Referred Journal |

| Volume 10, Issue 2, March 2023 |

दस लड़कियां मिल जाएंगी।" तब रमणिका गुप्ता महज़ सत्रह साल की रही होंगी। काँग्रेस पार्टी में उनकी आस्था बचपन से ही थी जो बाद में 1967 बिहार में संविद पार्टी बनने पर टूटी

राजनीति में प्रवेश करने वाली स्त्री को पहला खतरा यौन उत्पीड़न का होता है। यह खतरा उनके साथ पूरी राजनीतिक यात्रा में अनवरत बना रहता है। राजनीति की शक्ति संरचना में हमेशा से पुरुषों का वर्चस्व रहा। एक कार्यकर्ता से लेकर मंत्री तक अपने ओहदे का गलत इस्तेमाल करता हुआ महिलाओं पर यौन संबंध का दबाव बनाता है। राजनीति में होने वाले यौन उत्पीड़न पर वह लिखती हैं,[10] "वहाँ लोग स्त्री कार्यकर्ताओं को अपना कलेवा मानते थे जिसे भूख लगने पर खाने का एक स्वार्जित जन्मसिद्ध अधिकार उन्होंने प्राप्त कर रखा था। उनकी नज़र में बिना किसी पुरुष नेता – वृक्ष का सहारा लिए महिला नेता –

लता पनप और बढ़ नहीं सकती थी।" कांग्रेस के प्रति उनकी आस्था टूटने का मूल कारण यही था। वह 1967 में बिहार में काँग्रे स छोड़कर सोशलिस्ट पार्टी की हार के बावजूद भी उसमें शामिल हुईं।राजनीति में यौन उत्पीड़न का मामला समझौते की शक्ल लिए हो ता है। उसमें गहरी पेंच होती है जहां राजनेता महिलाओं को सीट और सत्ता का प्रलोभन देकर एक तरह का अघोषित समझौता करते हैं। इस संदर्भ में अपनी आत्मकथा के दूसरे भाग 'आपहुदरी' में वह लिखती हैं कि "राजनीति में समझौता और व्यभिचार ज्यादा चलता है और बलात्कार कम।"भारतीय राजनीति में जातिपक्ष एक वृहद विषय है। कई नेताओं के चुनावी मुद्दे जनताहित की जगह किसी क्षेत्र के जाति वि शेष के मुद्दे बन जाती है। भारत में कुछ राजनीतिक दलों का विकास जाति उत्थान जैसे गंभीर मुद्दों के बरक्स हुआ लेकिन अधिकतर दल जाति तुष्टीकरण तक ही सीमित रह गए इसी के नतीजन भारतीय राजनीति पर परिवारवाद हावी होता चला गया। इसी राजनीति में जातिग त विद्वेष और भी जटिल हो गए। रमणिका गुप्ता लिखती हैं,[11] "भूमिहार और राजपूत की लड़ाई में ब्राम्हणों की कूटनीति सदैव से दूसरों को लड़कर स्वयं नेता बने रहना रही, ताकि कोई फैसला ही नहीं हो सके। वे आपस में लड़ते रहे और ब्राम्हण नेता बने रहें।"आत्मकथा ई मानदार अभिव्यक्ति की मांग करती है। यह ईमानदारी रमणिका गुप्ता की आत्मकथा के दोनों भागों का आधारगत गुण है। जहां वह पूरी निर्भीकता से दूसरे राजनेताओं के राजनीतिक दाव-

पेंच का वर्णन करती हैं वहीं अपनी रणनीति भी छिपाती नहीं। उनका राजनीतिक जीवन 1960 में धनबाद से शुरू हुआ और 19 67-
68 तक उनकी राजनीतिक सक्रियता निरंतर बढ़ती रही। इस पूरी समयावधि की अपनी रणनीति अभिव्यक्त करते हुए लिखती हैं "मुझे य ह कहने मे कोई झिझक नहीं है कि धनबाद में जुझने के लिए जहां मेरी ज़िद ने मेरा साथ दिया, वहाँ मैंने अपने समर्थकों का सहारा लेकर भी अपना साध्य साधा। मैंने अपने दुश्मनों के दुश्मनों का इस्तेमाल भी किया। जहां मैंने नेताओं का सहयोग लिया वहीं मैंने मज़दूरों के हि तार्थ नेताओं के विरोधियों का उपयोग भी किया। इससे मेरी शक्ति बढ़ी। इन नेताओं ने मेरा भी कम दोहन नहीं किया। राजनीति में ऐसा होना आम बात है फिर मैं कैसे बच सकती थी।[12]" इस अभिव्यक्ति से भारतीय राजनीति की दो बातें प्रकाश में आती हैं। एक तो किस प्र कार 'दुश्मन का दुश्मन दोस्त होता है' की कूटनीति के तहत राजनीतिक दल गठबंधन की सरकार बनाते हैं। इसी तरह राजनीति में दोहन का क्रम चलता रहता है।

तत्कालीन बिहार रमणिका गुप्ता का मुख्य कार्यक्षेत्र था। साठ से लेकर नब्बे के दशक तक के उनके राजनीतिक सफर में बिहार की समू ची राजनीति का ब्यौरा उनकी आत्मकथा से मिलता है। इसमें कोलियरी आंदोलन, जल आंदोलन, आदिवासी आंदोलन, कोयला खदानों का राष्ट्रीकरण तथा तत्कालीन कांग्रेस की सरकार का तख्तापलट इत्यादि महत्वपूर्ण घटनाएं हैं। इन घटनाओं का भी महज़ तथ्यात्मक वर्ण न मात्र इन्होंने नहीं किया बल्कि इसके कार्यकारी अवयवों को विश्लेषित करते हुए उनके द्वारा सामान्य जन-

जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों को भी दर्शाया। कोयला खदानों के कारण वहाँ की आम जनता पर पड़ने वाले प्रभावों को रेखांकित करती हु ई वह लिखती हैं,"हर रोज़ नई–

नई खदानें खुलने से एक तरफ़ तो उनके जंगल कट गए। खेतों में कोयले की धूल भरने से फसलें नष्ट होने लगीं। खेत धीरे–
धीरे कम उपजाऊ हो गए और पहले ही से कम पानी वाले कुएं विस्फोटों से सूखने लगें, पानी के स्रोत बदलने लगें, दूसरी तरफ़ सरकार ने नए वन कानून बनाकर जंगल में उनका प्रवेश वर्जित कर दिया, जिससे उनके जल, जंगल और ज़मीन के पुश्तैनी अधिकार भी खत्म होने लगें।[13]"

पूंजीवादी व्यवस्था में भ्रष्टाचार एक सामान्य समस्या है। चाहे वह शिक्षा, न्याय या और भी कोई क्षेत्र हो। फिर राजनीति इससे बची कैसे हो सकती है। तत्कालीन बिहार में जब कोयला खदान की ज़िम्मेदारी सरकार ने ठेकेदारों को दी तो वह व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए द मित मज़दूरों का शोषण करने लगें। बिना किसी न्यूनतम वेतन के मज़दूरों को घंटों खदानों में खटवाना, उनकी सुरक्षा की कोई व्यवस्था न

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551| Peer Reviewed & Referred Journal |

| Volume 10, Issue 2, March 2023 |

करना और उन्हें सारी बुनियादी सुविधाओं से वंचित रखना कोयला खदानों के मजदूरों के शोषण की पराकाष्ठा थी । यह ठेकेदार कानूनी दाव-

पेंच जानते थे और उसका इस्तेमाल गरीब मज़दूरों के शोषण के लिए करते थे। "कानून से बचने के लिए ठेकेदार सबके नाम ब दल देता था और बच्चों के नाम पर माँ और बाप को खटाता था ताकि कोई स्थायी न होने पाए। कोलियरी का नियम है कि साल में लगातार खदान के ऊपर 240 दिन और भूमिगत खदानों में 180 दिन खटने वाला मजदूर स्थायी हो जाएगा। इन नियमों से बचने के लिए न हांज़री लगती थी, न बी फार्म रजिस्टर भरा जाता था न वेजिज सीट में भुगतान होता था। जाली रजिस्टरों में जाली नाम और जाली अंगूठों के निशा न लगाकर खानापूर्ति की जाती थी या अत्यंत वफ़ादार मजदूरों से अंगूठे और पाँव तक के अंगूठे के निशान लगवा लिए जाते थे।[14] 100 म ज़दूर खटते थे तो रजिस्टर में 30–

35 लिखे जाते थे ताकि अगर श्रम निरीक्षक या खनन विभाग का निरीक्षक कर ज़ब्त करके भी ले जाए तो वह पूरे मज़दूरों के ना म न जान पाए और मज़दूरों को स्थायी करने का दावा सिद्ध न हो सके।" इस तरह भारतीय राजनीति में भ्रष्टाचार और श्रम की राजनीति के गूढ़ रहस्यों का पर्दाफाश वे अपनी आत्मकथा में करती हैं।[12]

देश में निजीकरण का दौर शुरू हो चुका था। प्राकृतिक संसाधन बड़ी कंपनियों की गिरफ्त में आ रहे थे। इससे आदिवासी इला के सबसे अधिक प्रभावित हुए। उनकी खेती की ज़मीन, पीने की पानी के नदी, संसाधनों के जंगल को हथियाकर उनकी आजीविका पर प्र हार किया जा रहा था। यह केवल भौतिक हमला ही नहीं अपितु सांस्कृतिक हमला भी था। रमणिका गुप्ता जितने दिन राजनीति में सक्रिय रहीं आदिवासियों के अधिकारों के लिए लड़ती रहीं। उन्होंने आदिवासियों को एकत्रित किया और जल, जंगल, ज़मीन की लड़ाई को बुलंद किया। यह लड़ाई आदिवासी अस्मिता की लड़ाई भी थी। उनके नेतृत्व में 1968 में हज़ारीबाग में एक रैली निकली जिसमें 1500 आदिवा सियों ने भाग लिया। इतनी भीड़ उस समय केवल प्रतिष्ठित नेताओं की रैलियों में होती थी। उनका नारा 'घूस नहीं घूसा देंगे' काफ़ी चर्चित हु आ। उनके संघर्ष और आदिवासियों के एकजुट प्रयास के सामने पुलिस भी हार गई। उन्होंने लिखा है, "घूस नहीं घूसा देंगे' नारे के डर से जंगल के सिपाहियों ने जंगल में जाना छोड़ दिया था। राज्य सरकार ने तीसरे दिन हमें बुलाकर समझौता किया।"[10]

1970 में तत्कालीन बिहार में खदानों का राष्ट्रीकरण हुआ। सारी कोकिंग कोल खदानों पर सरकारी अधिकारियों का अधिकार हो गया। "कोयला मज़दूरों में खुशी की लहर दौड़ गई थी –

उन्हें शोषण से मुक्ति का आकाश नज़र आने लगा था, हालांकि यह मुक्ति आसानी से नहीं मिलने वाली थी।" यह निर्णय वहाँ के मज़दूरों के लगातार संघर्ष का परिणाम था।[8]

साल 1971 भारतीय राजनीति के लिए एक महत्वपूर्ण साल था। उस साल इंदिरा गांधी की सरकार केंद्र में थी। जब देश विभाजि त हुआ तब भारत का उत्तर पश्चिमी भाग पाकिस्तान बना और बंगाल से जुड़ा पूर्वी भाग (आज का बांग्लादेश) पूर्वी पाकिस्तान बना। 1971 में इंदिरा गांधी सरकार के हस्तक्षेप से पूर्वी पाकिस्तान एक स्वतंतत्र देश के रूप में बांग्लादेश बना। यह निर्णय कांग्रेस सरकार के लिए 'मी ल का पत्थर' साबित हुआ। इंदिरा गांधी सरकार की इस सफलता पर बिहार प्रदेश कांग्रेस कमिटी ने सभा आयोजित की। सभा में मंच पर इंदिरा गांधी की उपस्थिति में रमणिका गुप्ता ने अपने भाषण में कहा,
"लोग तो इतिहास बनाते हैं लेकिन आपने तो भूगोल बना दिया है। बांग्लादेश नाम से एक नया देश खड़ा कर दिया है। इसलिए आपके रह ते देश पर कोई खतरा नहीं है।" आत्मकथा में इस दृश्य को राजनीति में महिला सशक्तिकरण की दृष्टि से भी देखा जा सकता है। जहां एक महिला राजनीति में निर्णायक की अहम भूमिका पर पदासीन हैं तो दूसरी कार्यकर्ता के रूप में।[6]

कांग्रेस ने अपने कार्यकाल में कई महत्वपूर्ण योजनाएं बनाई लेकिन उनके निर्वाहन का दायित्व कांग्रेस कार्यकर्ता पूरी ज़िम्मेदारी के साथ नहीं निभा सके। सरकारी खज़ाने से जनता के लिए बनी योजनाओं के तहत जो राशि आती थी उनका पानी मंत्री, विधायकों और राजनीतिक कार्यकर्ताओं तक सुख जाता है। जैसे दुष्यंत कुमार की पंक्ति है कि 'यहाँ तक आते–
आते सुख जाती हैं कई नदियां, मुझे मालूम है पानी कहाँ ठहरा होगा।

1975 में तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने गरीबी-
उन्मूलन के लिए 20 सूत्रीय कार्यक्रम की घोषणा की थी। इसके अंतर्गत अन्तर्गत गरीबी हटाओं, जनशक्ति, किसान मित्र, श्रमिक कल्याण जैसे कई बिन्दु सम्मिलित थे। इसी योजना के अंतर्गत खेतिहर मजदूरों को उनकी तय मजदूरी भी मिलना निश्चित थी किन्तु राजनीति में भ्र ष्टाचार के कारण मजदूरों को कभी उनकी मजदूरी पूरी नहीं मिलती थी। [4]
इसपर एकबार रमणिका गुप्ता बिहार के कांग्रेस अध्यक्ष सीताराम केसरी से लड़ गई। "उन्होंने मुझसे पूछ लिया "क्या आप आई. जी पुलि स हैं की सब कांग्रेसी महाजनों और सूदखोरों को गिरफ़्तार करवा रही हैं? इन खेतिहर मजदूरों को आप पूरी मजदूरी दिलवा देंगी तो फिर

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551| Peer Reviewed & Referred Journal |

| Volume 10, Issue 2, March 2023 |

हमें पूछेगा कौन? दरअसल, आपको कम्युनिस्ट पार्टी में रहना चाहिए था। खेतिहर मजदूरों को अगर पूरी मजदूरी दिला दीजिएगा तो फिर हमारे पास मुद्दा क्या बचेगा?"[2]

इस प्रसंग से भारतीय राजनीति की बड़ी चोरी सामने आती है जो उसकी मूल प्रवृत्तियों में शामिल है। हर चुनाव में विकास के मु द्दे उठाना और उन्हें कभी पूरा न होने देना ताकि अगले चुनाव में वही मुद्दे पुनः उठाए जा सके। रोटी और पानी जैसे आधारगत समस्याएं इ स देश में दशकों से चलती आ रही हैं और आज भी बनी हुई हैं। उसके पीछे इन्हीं राजनीतिक कूटनीतियों का हाथ है जिसे लगभग सभी राजनीतिक प्रतिनिधि पल्लवित और पोषित करते हैं। लेकिन इनमें रमणिका गुप्ता जैसी राजनीतिक प्रतिनिधियों का अपवाद भी है जो जन ता के हक को उस तक बिना किसी काट-

छाट के पहुंचाना चाहती हैं। ऐसा करने वाले प्रतिनिधियों के रास्ते में उनके ही पार्टी के लोग बाधा बनते हैं। यह इस बात को भी दर्शाता है कि किसी एक दल में होकर उसकी विचारधारा का दावा करने वाले सदस्य वास्तविकता में कितने दोहरे चरित्र के होते हैं।[5]

आत्मकथा में जहां रमणिका गुप्ता एक तरफ़ इंदिरा गांधी सरकार की बांग्लादेश के निर्माण पर मुक्त कंठ से प्रसंशा करती हैं व हीं दूसरी तरफ़ कांग्रेस के सहकर्ताओं के कूटनीति की पोल भी खोलती हैं। चरित्र की यह निष्पक्षता उनके पूरे जीवन और आत्मकथा में भी बनी रही। किसी दल विशेष की सदस्य होने के बावजूद भी रमणिका गुप्ता की राजनीतिक विचारधारा तथा नीति स्वतंत्र और निष्पक्ष थे । वो सच का साथ देने के लिए दूसरी पार्टी के मुद्दों का भी समर्थन करतीं और झूठ और अन्याय होने पर अपनी पार्टी के लोगों की कड़ी आलोचना भी करती थीं। इसी से संबंधित एक प्रसंग वह अपनी आत्मकथा में लिखती हैं जब विधानसभा में कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) के एक विधायक अपने क्षेत्र की एक नाबालिक बच्ची के साथ बलात्कार का मामला सदन में उठाते हैं और एक लेडी डॉक्टर के द्वारा बच्ची की गलत रिपोर्ट निकाल कर अपराधी की मदद का आरोप लगाते हैं। रमणिका उनके द्वारा उठाए इस मामले का समर्थन करती हैं और सत्ता पक्ष की स्त्री विधायकों से कहती हैं, "पार्टी का नहीं औरत का पक्ष देखो और मंत्री से जवाब मांगों।" आगे वह लिखती हैं "मुझे कई बा र लगता था की जैसे विधायक अपनी-

अपनी पार्टी के बधुआ गुलाम हों! कई बार विधायक को न चाहते हुए भी विधानसभा में सच का साथ न देकर अपनी पार्टी की गलतियों पर पर्दा डालने में सहयोग करना पड़ता है।"

रमणिका गुप्ता अपनी पूरी आत्मकथा में स्त्रियों के साथ हुए हर तरह के अन्याय, अत्याचार और शोषण को रेखांकित करते हुए उनके कार्यकारी घटकों की तीखी आलोचना करती हैं। बचपन से ही विद्रोही स्वभाव होने के कारण अपने आसपास होने वाले स्त्री-[7] दलन और पितृसत्ता के खिलाफ़ वह मुखर विरोध प्रकट करती हैं। चाहे वह मौलिक अधिकारों का प्रश्न हो, स्त्री-शिक्षा का सवाल हो, प्रेम-विवाह की आज़ादी हो या स्त्री-

देह और यौनिकता की स्वतंत्रता हो, उन्होंने हर पक्ष पर अपना निर्भीक मत ज़ाहिर किया। अपनी आत्मकथा 'हादसे' में कई जग हों पर उन्होंने भारतीय राजनीति में स्त्री की दमित अवस्था को उजागर किया है। इसमें राजनेताओं की पुरुषवादी आलोचना करते हुए एक जगह लिखती हैं,

"नेताओं के यहाँ औरतों को फुसलाने और फ़साने के लिए विधिवत दलाल होते हैं जो केवल औरतों को डिमॉरलाइज़ करने में माहिर होते हैं ताकि राजनीति में आई स्त्रियाँ इनकी शर्तों पर जीने को विवश हो जाएं।"17 अपनी बोल्ड अभिव्यक्ति द्वारा वह स्त्री अस्मिता के साथ द लित और आदिवासी अस्मिताओं पर भी बात करती हैं। एक लंबा समय उन्होंने दलित और आदिवासी बस्तियों में बिताया है। वहाँ रहकर अपनी राजनीतिक कार्यशीलता से उन्होंने उपेक्षित वर्ग के समाज में अस्मिता की चेतना का संचार किया। आंदोलन के लिए मज़दूरों को सं गठित करते हुए वो उनसे कहती हैं कि[9] "चूहों की तरह बिलों में घुट-

घुटकर मरना है या बाहर आकर लड़ते हुए?" संसदीय गठन के बाद भारतीय राजनीति में ऐसी कम ही महिला प्रतिनिधि थीं जिन्होंने स्तरी य रूप से लोगों को संगठित कर आंदोलन करवाएं, जनता के मौलिक अधिकारों और आधारगत सुविधाओं के लिए लड़ाइयाँ लड़ीं।

राजनीति और स्त्री यह दो शब्द कई हज़ार सालों से विविध संदर्भों में एक दूसरे से जुड़े हैं। मिथकीय कथाओं को देखें या देश[11] – दुनिया के इतिहास को स्त्री की राजनीति में प्रत्यक्ष सहभागिता न होते हुए भी राजनीति का सारा खेल उसके इर्द – गिर्द खेला गया। स्त्री हमेशा से एक संपत्ति की तरह देखी गई। उसे जीतने –

हारने या लूटने की कथाओं और घटनाओं से इतिहास और साहित्य भरा हुआ है। स्त्री की सीमाओं का निर्धारण करने वाला पुरु ष प्रधान समाज उसके लिए अपनी सुविधा के अनुरूप एक निश्चित खाँका तैयार करता है। स्त्री का राजनीति में प्रवेश उस खाँके को तोड़ने का सबसे सशक्त माध्यम है। जब राजनीति में स्त्री की सहभागिता बढ़ती है तब राजनीति और समाज में तो आवश्यक परिवर्तन आते ही हैं उसके अपने भीतर भी बहुत कुछ बदल जाता है। वह संपत्ति समझी जाने वाली रूढ़ मानसिकता को तोड़ कर समष्टि की ओर बढ़ती है।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551| Peer Reviewed & Referred Journal |

| Volume 10, Issue 2, March 2023 |

उसे अपनी व्यक्तिगत अस्मिता की पहचान के साथ अपनी सामाजिक अस्मिता का बोध भी होता है। अपने जीवन में राजनीति का प्रभाव बताते हुए रमणिका गुप्ता लिखती हैं,[13]

"जीवन की उस लंबी लड़ाई की शुरुआत हुई जो व्यक्ति नहीं बल्कि समूह, समष्टि और व्यवस्था के परिवर्तन से जुड़ी थी। उसमें अकेली 'मैं' नहीं थी बल्कि समष्टि थी। समष्टि के प्रतीक 'मैं' – एक व्यापक दृष्टि का रूप 'मैं'। मैं समाहित हो गई थी उस समूह में और समूह व्याप्त हो गया था मुझमें।"

रमणिका गुप्ता की आत्मकथा महज़ एक स्त्री द्वारा देखे और भोगे हुए यथार्थों का व्याख्यान नहीं है। वह भारतीय राजनीति का नाटकीय इतिहास भी है। भारतीय राजनीति और भारतीय राज्य के दमन का खुला आख्यान है जिसमें उन्होंने बड़ी प्रखरता से राजनीतिक विडंबनाओं को रेखांकित किया है। राजेन्द्र यादव ने उनकी आत्मकथा को 'एक औरत की नहीं, राजनीतिक कार्यकर्ता की कहानी अधिक' माना है। उनकी आत्मकथा में स्त्री, दलित एवं आदिवासी विमर्शों का स्वर प्रमुख है। राजनीति में पितृसत्ता के कारण होने वाले स्त्री दमन की इतनी उनमुक्त अभिव्यक्ति हिन्दी की किसी अन्य आत्मकथा में नहीं मिलती। इनकी आत्मकथा में साठ के दशक से नब्बे के दशक तक की भारतीय राजनीति की महत्वपूर्ण घटनाओं का ब्यौरा है। जिसमें कच्छ आंदोलन से लेकर बिहार के कोलियरी खदानों के संघर्ष, आदिवासी, दलित, स्त्री संघर्ष, आपातकल आदि जैसी घटनाएं शामिल हैं। पंजाब के संभ्रांत परिवार में पैदा हुई एक ज़िद्दी लड़की किस तरह बिहार के उपेक्षित वर्ग के संघर्षों की साथी बनती हैं फिर कांग्रेस की जिलाध्यक्ष और 'मांडू विधान सभा' की सदस्य भी बनती हैं। अपनी आत्मकथा में वह बताती हैं कि किस तरह राजनीति में स्त्री की सहभागिता उसके समूचे अस्तित्व को बदल देती है। वह लिखती हैं कि "राजनीति में देर तक टिक जाने वाली औरतों को उनकी सहन-[14]

शक्ति के कारण स्वभावतः एक प्रतिष्ठा मिल जाती है। वे एक ऐसे स्तर पर पहुँच जाती हैं जहां औरत का लिंग या व्यक्ति गौण हो जाता है।" उन्होंने अपनी राजनीतिक पहचान के लिए किसी का सहारा नहीं लिया, उन्हें राजनीति में पुरुषवाद के वृक्ष का सहारा लेकर लता की तरह नहीं बढ़ना था। उनकी आत्मकथा के दोनों भाग इस बात का प्रमाण है कि भारतीय राजनीति में बतौर महिला वह एक लता नहीं बल्कि पेड़ की तरह बढ़ी जिसने हाशिए के समाज के लाखों लोगों को छाया दी। प्रकाशन ने किताब का परिचय देते हुए लिखा है- 'उनकी आत्मकथा की पहली कड़ी 'हादसे' से यह कई अर्थों में अलग है. सच कहें, तो यही है उनकी असल आत्मकथा.'.....'एक रचनाकार, सामाजिक कार्यकर्ता और राजनेता के रूप में रमणिका जी का धनबाद तक का जीवन बड़े रोचक ढंग से सामने आता है.'.... 'एक निर्भीक स्त्री के जीवन पर आधारित ऐसी आत्मकथा है जिसे पाठक एक रोचक उपन्यास की तरह पढ़ेंगे.'..... 'रमणिका जी की इस बेहद बोल्ड आत्मकथा को पढ़कर कुछ और रचनाकार आत्मकथा लिखने की हिम्मत दिखाएं तो हमारा यह प्रयास सफल होगा.' कहना न होगा कि प्रकाशन ने उनकी आत्मकथा को समझने का प्रयास नहीं किया है. बस उसमें से एक शब्द 'सेक्स' निकाल लिया है और इस वजह से 'बोल्ड' शब्द का इस्तेमाल किया है. प्रकाशन के बारे में जजमेंटल हुआ जा सकता है. रमणिका गुप्ता का धनबाद तक का जीवन बेहद कष्टमय और यौन शोषण से घिरा हुआ रहा है. इसे रोचक तो कतई नहीं कहा जा सकता. फिर ये रोचक उपन्यास की तरह नहीं है, एक स्त्री के लड़ने और पराजित होने की दारुण कथा और फिर से मात देकर खुद के सर्वाइवल की बहादुरी कथा है. आखिरी बात, बेहद बोल्ड आत्मकथा नहीं है, बेहद सच आत्मकथा है.[10]

आत्मकथा में तीन बातें बार-बार सामने आती हैं

अगर रमणिका गुप्ता के शब्दों में ही उनकी इस आत्मकथा को समेटें तो तीन चीजें निकल के आती हैं- यौन शोषण, यौन इच्छा और अपराध-बोध. एक स्त्री के इन तीन परिस्थितियों से जूझने की कहानी है ये. 1930 में एक संपन्न पंजाबी परिवार में जन्मी रमणिका गुप्ता का बचपन में ही उनके एक आर्यसमाजी मास्टर ने यौन शोषण किया था. उनके घर में ही, उनके माता-पिता के सामने रजाई में बैठ भी जाता था. रमणिका के साथ. अपने मां-बाप से ये बात वो कभी शेयर नहीं कर पाईं. फिर रमणिका के घर के नौकर ने, उनके चचेरे भाई ने भी यौन शोषण किया. अपने नाना और मौसी के संबंधों के बारे में भी गुपचुप बातें सुनीं. अपने पापा की उन्नत सेक्स लाइफ का हाल देखा. सौतेली मां का व्यवहार भी झेला. अंत में इनकी भाभी ने इनके साथ लेस्बियन संबंध बनाये और कई बार यौन शोषण किया.रमणिका गुप्ता कभी इस यौन शोषण के बारे में नहीं बता पाईं. बचपन में जब मानसिक स्थिति ऐसी होती है कि रातें जागकर गुजारनी पड़ें ताकि कोई यौन शोषण ना कर सके तो इसका मन पर कड़ा प्रभाव पड़ता है. इससे निकलना आसान नहीं होता. बीच में रमणिका जी को उनके एक दोस्त हामिद, बलराम और अपनी बुआ के लड़के से भी प्रेम हो गया था. कम उम्र में प्रेम और उससे ज्यादा वैलिडेशन पाने की आकांक्षा थी. बच्चा कहीं सुरक्षा खोजता है. हालांकि इनको नहीं मिला. दंगों के वक्त हामिद से मिलने रमणिका राखी लेकर गई थीं. ताकि बीच में हिंदू दंगाई पकड़ लें तो वो बचाव कर सकें.[11]

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551| Peer Reviewed & Referred Journal |

| Volume 10, Issue 2, March 2023 |

बाद में छोटी सरकारी नौकरी वाले प्रकाश गुप्ता से मिलीं और झट से पसंद कर लिया. घरवालों की मर्जी के विपरीत उन्होंने प्रकाश से शादी कर ली. बाद में बताती हैं कि मास्टर और घर के कलह से तंग आकर उन्होंने शायद ये शादी कर ली थी. शादी के बाद प्रकाश और रमणिका दोनों ने अपने साथ हुई सारी चीजों को शेयर किया. प्रकाश के अपनी भाभी से संबंध थे. सब कुछ अच्छा हो चला. पर प्रकाश की पैसे को लेकर कंजूसी से जो खींच-तान शुरू हुई वो दोनों के बीच शक और झंझट से होती हुई अलगाव का कारण बन गई.यहां पर रमणिका एक अजीब तरीके से खुद को डिफेंड करती हैं. प्रकाश पर शक्की होने का इल्जाम लगाती हैं और उसके शक को सही साबित करते जाती हैं. प्रकाश से नाराज होने के बाद रमणिका जी का एक वक्त में तीन पुरुषों से अफेयर हो जाता है. एक पुरुष आहूजा शुरू से ही क्लियर कर देता है कि उसका प्रेम इतने संबंध से आगे नहीं, वो रमणिका को हमेशा भाते रहता है. उसका जिक्र पूरी किताब में कहीं कहीं होते रहता है. इसके अलावा बलजीत, संजय, अरोड़ा समेत तमाम पुरुषों से उनका संबंध बनता है. ये सारे संबंध पैसों को लेकर बनते हैं. यहां तक कि एक होटल के मैनेजर से भी इसी बाबत संबंध बनते हैं. यहां रमणिका जी प्रकाश से अलग रहती हैं और अपने खर्चों को इस चीज का जिम्मेवार मानती हैं. एक बूढ़ा मिलिट्री ऑफिसर जबर्दस्ती भी करता है. उनके कई दोस्त अपने बहुत सारे दोस्तों को भी ला देते हैं संबंध बनाने के लिए. रमणिका अपने दोस्तों से नाराज होती हैं, पर पूरी तरह संबंध खत्म नहीं करतीं.पर प्रकाश से उनका तलाक भी नहीं होता. इसका कहीं जिक्र भी नहीं है. प्रकाश को कोसते रहती हैं पर तलाक नहीं लेतीं.इसके बाद जब ट्रांसफर होकर प्रकाश धनबाद आ जाते हैं तो रमणिका गुप्ता जी बच्चों सहित उनके साथ ही रहने लगती हैं. यहां पर रमणिका गुप्ता के संबंध बिहार के नेताओं से बनते हैं. मुख्यमंत्री से लेकर लोकल नेता, ऑफिसर सबसे. बाद में आदिवासियों के हक के लिए लड़ती हैं लाडली, एक आर्मी ऑफिसर राज इत्यादि से संबंध बनते हैं. एक टिकट कलेक्टर, सरकारी ऑफिसर से भी संबंध बनते हैं. वो नेतागिरी में भी आगे बढ़ती हैं और विधान परिषद में पहुंचती हैं. इससे पहले ही कांग्रेस के एक बड़े नेता नीलम संजीव रेड्डी उनके साथ जबर्दस्ती करते हैं. बाद में वो राष्ट्रपति बनते हैं.यहां रमणिका गुप्ता जी बार-बार अपने शरीर पर अधिकार होने की बात कहती तो हैं, पर पुरुषों के आभामंडल में ये अधिकार कहीं दिखता नहीं है. हर पुरुष उनको उसी अधिकार का भरोसा दिलाता है पर अंत में नतीजा वही निकलता है. रमणिका जी को धोखा मिलता है. आर्मी ऑफिसर राज के बारे में वो पहले बताती हैं कि वो अपनी पत्नी को इस अफेयर से दुखी नहीं करता था. पढ़ के लगता है कि राज और उसकी पत्नी खूब खुले और समझदार हैं. पर कुछ पन्नों बाद पता चलता है कि राज की अलग ही फैंटेसी है. वो अपनी पत्नी के सामने ही रमणिका से रोमांस करने लगता है और पत्नी बेहोश हो जाती है. इसी तरह नेताओं के किस्से भी अजीब से हैं, जिन्हें रोमांस नहीं कहा जा सकता.जहां भी रमणिका गुप्ता ने आवाज उठाई है, वहां उनको साइड कर दिया गया है. जब तक वो पुरुषों के साथ वैसे रहती हैं, जैसे वो चाहते हैं, सब ठीक रहता है. प्रतिरोध करते ही फंस जाती हैं. ये बात उन्होंने एक जगह स्वीकार भी किया है.एक जगह उन्होंने अपने पति प्रकाश के वरिष्ठ अधिकारी की बात की है. उस अधिकारी ने लंबे समय तक इन पर दबाव बनाकर संबंध बनाया. यहां पर रमणिका गुप्ता ये कहती हैं कि मुझे डर था कि मेरे न मानने की वजह से वो कहीं प्रकाश की पदोन्नति ना रोक दे. फिर बताती हैं कि मुंबई से लुधियाना तक वो पीछा करता रहा और अपने रिटायरमेंट तक उसने रमणिका से संबंध बनाया.ये चीजें पढ़ के अंदाजा लगता है कि सारी घटनाएं यौनेच्छा और शरीर पर अधिकार से ही नहीं जुड़ी हैं. प्रैक्टिकल में कई जगह उनका यौन-शोषण हुआ है. और कई जगह रमणिका गुप्ता बलत्कृत हुई हैं. एक जगह वो लिखती भी हैं कि नैतिकता बोध खत्म हो गया और मेरी ललक हर चीज पर हावी हो गई.पर इसके साथ वो लगातार अनंत प्रेम और उन्मुक्त जीवन की बातें भी करती हैं. वो प्रेम खोज रही हैं, पर किससे और किस तरह का, ये नहीं पता. वो मुक्त रहना चाहती हैं, पर किससे, ये भी नहीं पता चलता. अपने बच्चों को वो एक सामान्य जिम्मेदार नारी की तरह ही पालती-पोसती हैं. कुछेक बार अपने बच्चों को हॉस्टल या आया के जिम्मे छोड़ा है उन्होंने. हालांकि इसका ज्यादा उल्लेख नहीं मिलता. पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि एक बांध टूटा और फिर ठहरने का कोई रास्ता नहीं बचा था. बस जहां दिल आया, लगा लिए. अगर बेइज्जत हुए या नहीं पसंद आया, तो आगे बढ़ गए. इस क्रम में सारी चीजें झेलनी भी पड़ीं. तीन बच्चे और छह अबॉर्शन. पैसे के लिए लोगों की बातें माननी पड़ीं और हर चीज को अपना चुनाव ही समझना पड़ा. या वाकई ये चुनाव ही था?प्रस्तावना में काफी गहरी बातें लिखी हैं-किताब की शुरुआत ही रमणिका जी पाठकों से ये पूछ के करती हैं कि क्या मैं बुरी थी, पढ़ के बताईएगा. लिखती हैं कि पता नहीं क्यों एक अंतरंग साथी बनकर एक पुरुष मेरी मदद में आ जाता, जबकि पुरुष से ही त्रस्त थी मैं. ये भी लिखती हैं कि मैंने बेहद प्रेम किया है और घृणा भी पाई है. फिर कहती हैं कि मुझमें कई भटकाव आए पर मैंने खुद को उनसे उबारा. प्रेम और लक्ष्य की तनातनी के बारे में भी बात करती हैं. बताती हैं कि लड़कियों का सच है- पहले सह लेना फिर प्रतिवाद करना. मतलब जब कुछ बुरा हो रहा है, तब बोल ना पाना. बाद में कहना. इसके पीछे है शुचिता के हनन का खतरा. चरित्र पर कोई दाग ना लग जाए. फिर लिखती हैं कि मैंने कुछ छुपाया ही नहीं. शुचिता मुद्दा ही नहीं है. गोपनीयता ही स्त्रियों को फंसाती है. अपराध-बोध की यात्रा पर निकली स्त्रियां ही समाज को बदल सकती हैं.[12]

रमणिका जी का बचपन में हुआ यौन-शोषण काफी हद तक उनकी मानसिकता और फिलॉसफी को प्रभावित करता है. वो अपने बचपन की चीजों को भी उसी फिलॉसोफिकल अंदाज में बताती हैं. पढ़ के लगेगा कि वो बचपन से ही इसी फिलॉसफी के साथ जी रही थीं. जबकि ऐसा संभव नहीं है. संभव ये है कि बचपन से मन में बैठी चीजों से निपटने के लिए ये फिलॉसफी बना ली गई हो. मां-बाप या पति से सपोर्ट ना मिल पाना इसके पीछे एक वजह रही हो.[13]

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551| Peer Reviewed & Referred Journal |

| Volume 10, Issue 2, March 2023 |

अगर पैसे रुपये या पढ़ाई लिखाई की बात करें तो इसकी कोई कमी नहीं थी. वो विदेश से पढ़कर आई थीं. पर बड़े घरों में भी ये चीजें झेलनी पड़ सकती हैं, ये लोग पहले नहीं सोच पाते थे.अपने अपने नजरिए से कई चीजें समझ आएंगी-हम एक पैट्रियार्कल समाज से आते हैं तो हमारे लिए बहुत सारी चीजें समझना मुश्किल है. हो सकता है कि एक औरत के लिए मुक्ति का मार्ग ऐसा ही हो. उसकी मुक्ति इसमें हो कि वो जब जहां से चाहे, प्रेम ले. इस क्रम में उसे जलालत भी झेलनी पड़े. हमारा रिएक्शन होगा कि हम चाहेंगे जलील करने वाले आदमी को औरत छोड़ दे और फिर से किसी के साथ स्टेबल जीवन व्यतीत करे. ये मेरा अपना पुरुषवादी रवैया हो सकता है. पर हो सकता है कि औरत को स्टेबिलिटी पसंद ही ना हो. हो सकता है कि उसे पता ही ना हो कि उसे क्या पसंद है. कुछ भी हो सकता है. हम बस अनुमान लगाते रह जाएंगे. कहने का मतलब कि हर व्यक्ति अपने हिसाब से ही जी सकता है. वो अपने हिसाब से जीने के खतरे उठाएगा और जैसे चाहे रहेगा. स्टेबल रहने वाले लोगों को उद्वेलित कर जाएगा. क्योंकि रमणिका गुप्ता एक जगह लिखती हैं कि राजनीति में आने के बाद औरतों के साथ ऐसा होता ही है.भाषा और शैली के लिए तो नहीं, लेकिन घटनाओं के लिए ये किताब पढ़ने लायक है. सबसे ज्यादा समाज को समझने के लिए. मनोविज्ञान, क्लास, समाज, पॉलिटिक्स, फाइनेंस- बहुत सारी चीजें जुड़ी हैं इस कहानी में. ये बताने के लिए कि बहुत बार हमारी मर्जी भी इन्हीं चीजों से संचालित होती है. हमें लगता है कि मर्जी है, पर हम किसी और चीज के हाथों की कठपुतली बने रहते हैं.आखिरी बात, हो सकता है कि मुक्ति का रास्ता ऐसा ही हो. किसी भी स्वतंत्रता की लड़ाई उसी तरीके से होती है, जिसे एक 'सामान्य इंसान' पसंद नहीं करेगा. आजादी की लड़ाई में भी पैरों में कीलें ठुकवाने और काला-पानी जानेवालों को भी बहुत सारे लोग गलत ही समझते होंगे.एक और बात, जीते जी किसी इंसान को उसके चुनावों के लिए हम कोसते रहते हैं. पर किताब आ जाने के बाद और मृत्यु के बाद हम ऐसा व्यवहार करते हैं जैसे वो इंसान सामने होता तो हम उसे सबसे बचा लेते. उसके लिए लड़ते. हम वर्तमान से डरते हैं.[14]

विचार-विमर्श

रमणिका गुप्ता ने विमर्श के रूप में हिंदी साहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।उन्होंने आदिवासी जीवन पर कई पुस्तकें लिखी हैं।वे प्रख्यात साहित्यकार,सामजिक कार्यकर्त्ता,समाजसेवा और राजनीति सहित कई क्षेत्रों से जुड़ी हुई थीं।[1]उन्होंने स्त्री विमर्श पर बेहतरीन काम किया और वह सामाजिक सरोकारों की पत्रिका 'युद्धरत आम आदमी' की संपादक भी थीं। उन्होंने झारखंड के हज़ारीबाग के कोयलांचल से मजदूर आंदोलनों को साहित्य के ज़रिये राष्ट्रीय स्तर पर पहुँचाने का काम किया। बिहार विधानसभा और विधान परिषद् में विधायक भी रही।[2] उनका जन्म २२ अप्रैल १९३० को पंजाब के सुनाम नामक स्थान पर तथा निधन 89 वर्ष की अवस्था में २६ मार्च २०१९ को नई दिल्ली में हुआ। मृत्यु से पूर्व वे झारखंड में मांडू के विधायक पद पर कार्यरत थीं। रमणिका गुप्ता की आत्मकथा 'हादसे और आपहुदरी' बेहद लोकप्रिय पुस्तक मानी जाती है। इसके अलावा, उनकी प्रमुख रचनाओं में 'भीड़ सतर में चलने लगी है', 'तुम कौन', 'तिल-तिल नूतन', 'मैं आजाद हुई हूं', 'अब मूरख नहीं बनेंगे हम', 'भला मैं कैसे मरती', 'आदम से आदमी तक', 'विज्ञापन बनते कवि', 'कैसे करोगे बँटवारा इतिहास का', 'दलित हस्तक्षेप', 'निज घरे परदेसी', 'सांप्रदायिकता के बदलते चेहरे', 'कलम और कुदाल के बहाने', 'दलित हस्तक्षेप', 'दलित चेतना- साहित्यिक और सामाजिक सरोकार', 'दक्षिण- वाम के कठघरे' और 'दलित साहित्य', 'असम नरसंहार-एक रपट', 'राष्ट्रीय एकता', 'विघटन के बीज' शामिल हैं।[11]

रमणिका गुप्ता के बारे में यह बात दावे के साथ कही जा सकती है कि उन्होंने जो जिया वही लिखा। अमूमन, यह बात सभी रचनाकारों के बारे में सच नहीं होती। हालांकि, जिए हुए को ही कागज पर उतार देना किसी महान साहित्य का मानदंड नहीं हो सकता, जैसा कि इलियट कहते थे, 'भोक्ता और लेखक के बीच जितना बड़ा अंतर होता है लेखक उतना ही बड़ा होता है।' अनुभवों का अतिक्रमण और कल्पना की उड़ान अच्छे साहित्य के लिए कैटेलिस्ट का काम करती है और इससे इनकार नहीं किया जा सकता। इसके बरअक्स जीवन से उपजे लेखन की एक विशेषता यह होती है कि उसकी प्रामाणिकता के विषय में कोई भी संदेह व्यक्त करना इतना आसान नहीं रह जाता। यहां हम लेखक की ईमानदारी के संदर्भ में ही बात कर रहे होते हैं- व्यक्तिगत भी और रचनागत भी। रमणिका जी का सार्वजनिक जीवन बहुत लंबा रहा है और उनकी रचनाओं पर कोई भी टिप्पणी करना, समीक्षा करना दरअसल उस पूरे जीवन की समीक्षा बन जाता है जहां से रचना छन कर आई है। साथ ही यह कार्य लेखकीय ईमानदारी की पड़ताल भी है और भोक्ता व लेखक के अंतर्सम्बंधों का परीक्षण भी है। यानी रचनाकार की कसौटी और इससे बचा नहीं जा सकता। यह एक आपद्धर्म है। इसके लिए आवश्यक है कि जितनी घनिष्ठता रचनाओं के साथ हो उतनी ही रचनाकार के साथ भी होनी चाहिए। रमणिका गुप्ता के बारे में यह काम इसलिए और आसान हो जाता है क्योंकि सार्वजनिक जीवन में उनके साथ हुए हादसे और दूसरों के साथ उनके द्वारा किए गए सुलूक आप तक उनके व्यक्तिगत संपर्क में रहे बगैर भी पहुंचते रहते हैं। वास्तव में, इसमें रमणिका जी का भी उतना ही अवदान है जितना उनको चाहने और न चाहने वालों का- बल्कि उनसे कहीं ज्यादा। इसलिए, कविता सिर्फ कविता ही नहीं रह जाती, कहानी सिर्फ कहानी नहीं, बल्कि उस जीवनानुभव का एक दस्तावेज बन जाते हैं जिसमें बतौर रचनाकार हिपोक्रेसी के लिए लेशमात्र भी स्थान ही नहीं बचता। इसी गैर-मौजूद हिपोक्रेसी और खुली किताब सरीखे जीवन के छूटे-दबे पन्नों की पड़ताल की कोशिश हम उनकी कविताओं के माध्यम से कर सकते हैं।[14]

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551| Peer Reviewed & Referred Journal |

| Volume 10, Issue 2, March 2023 |

रमणिका गुप्ता की कविताओं में, दरअसल शुरू से लेकर अंत तक मुक्ति की एक ज़िद है। यह मुक्ति तमाम रूपों में उनकी रचनाओं में व्यक्त होती है। इसके कई अध्याय हैं। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि रमणिका गुप्ता का सारा काव्य-कर्म वंचितों की आवाज को असर्ट करने का एक वृहत् आंदोलन है। इनमें महिलाएं, आदिवासी, दलित और वे तमाम वर्ग हैं जिनके अधिकारों के लिए कवियित्री आजीवन युद्धरत रहीं। यह संघर्ष कहां से शुरू हुआ, किन रास्तों से होता हुआ कहां तक पहुंचा-यह एक भिन्न सवाल है, लेकिन रमणिका जी की कविताओं को पढ़ते हुए इतना अवश्य आभासित होता है कि इन सभी संघर्षों के मूल में उनकी व्यक्तिगत मुक्ति की आकांक्षा ही रही है। वे खुद इस बात को स्वीकार भी करती हैं, हालांकि दबे-छिपे स्वर में ही, '...मैं/प्रतिबंधों की चैखट पर खड़ी/समय की दहलीज लांघकर/परंपरा के किवाड़ों से/निषेध की/कीलें उखाड़ रही थी..।' निषेध की ये कीलें देह की मुक्ति पर कसी बेड़ियों को संकेतित करती हैं। देह से शुरू होकर गेह तक पहुंचने वाले इस मुक्ति के विमर्श में बाधाएं तब आती हैं जब, बकौल कवियित्री, '...कि दरवाजा/बेबसी की चरमराहट से/टूटने लगा...।' दरवाजे का यह टूटना, चरमराना यदि एक मुक्ति के नए युग की शुरुआत है तो गुलामी का नया अध्याय भी- '...दरारें पड़ गईं-समय की/झांका तो वह हाथ फैलाए खड़े थे...।'[7]

इन फैले हुए हाथों को रमणिका जी की कई कविताओं में लक्षित किया जा सकता है। कहीं यह 'कफन' है, कहीं 'जंजीर' तो कहीं 'घेर' ओर 'दीवार', तो कहीं 'खूंटे' के रूप में पुरुष वर्चस्व का प्रतिनिधि है। रमणिका गुप्ता की कविताओं में प्रमुखता से व्यक्त स्त्री विमर्श की अपनी अंतर्निहित सीमाएं हैं। कविताओं में स्त्री-मुक्ति का स्वर, अपनी देह पर स्वायत्तता के अधिकार की गूंज इतनी लाउड है कि कहीं न कहीं असली सवाल गुम सा हो जाता है। 'नारीपन' से 'इंसान' बनने तक की जिस यात्रा की बात तमाम स्त्री-विषयक कविताओं में दिखाई देती है, वह दरअसल स्त्री द्वारा उसकी ही देह पर स्वाधिकार की मांग से आगे नहीं बढ़ पाती। बार-बार कविताओं में 'वक्ष' का आना एक ऐसी कुंठित मुक्ति का द्योतक है जो प्रच्छन्न स्तर पर सीमोन के उस वाक्य की पुष्टि करता है कि 'स्त्रियां चाहती हैं कि पुरुष उनके ऊपर अपना अधिकार जताएं।' यही वजह है कि रमणिका गुप्ता का स्त्री-विमर्श एक ऐसे दुष्चक्र में फंस जाता है जहां से निकलना या आगे बढ़ना असंभव सा प्रतीत होता है-'...और जल्दी-जल्दी/कीलें बटोरकर/फिर जोड़ने लगी/पर सदियों से लगी कीलें-/जो उखड़ी थीं-/अब अंटती न थीं-/दरवाजों में/समय गुज़र गया था न बीच में/रूढ़ि टूटी थी न।'[9]

इसकी अनिवार्य परिणति क्या होती है, उसे समझना ज्यादा कठिन नहीं। रमणिका जी तमाम घेरने वाले, बांधने वाले, गुलाम बनाने वाले खूंटों को अपनी संप्रति स्थिति समर्पित करती हैं, लेकिन अंततः, '...समर्पित उस रमणिका को/जिसने मुझे रमणिका बना दिया।' यह आत्ममुग्धता का अतिरेक है। जिस लेखकीय ईमानदारी की बात हमने आरंभ में की थी, वह यहां चुकती हुई दिखाई देती है क्योंकि आत्मगत अनुभवों का अतिक्रमण नहीं किया गया। अपनी पूंछ का पीछा करना है यह। यहां हम एक ऐसे कलाकार से रूबरू होते हैं, जिसकी अज्ञेय के शब्दों में कहें तो-'अपने हृदय की अनुभूति इतनी तीव्र थी कि मैंने कभी यह नहीं समझा कि उसे भी हृदय हो सकता है। मैं समझा वह एक सुंदर चीज है, साकार सौन्दर्य, किंतु कठोर, अलभ्य; जिसका ऊपरी आवरण मात्र स्पृश्य है...शायद-निश्चय-इसीलिए मेरे प्रेम में अवास्तविकता रहती थी, क्योंकि सुंदर पत्थर से प्रेम नहीं किया जा सकता।'[11]

अज्ञेय की छाया-कथा का यह अंत था- लेकिन आखिरकार यह स्वीकारोक्ति कि '..मैं असभ्य हूं, जंगली हूं, दिगम्बर हूं, पर देखो, मेरे हृदय में विश्वास है...।' रमणिका अपनी कविताओं में इस जांगल भाव, दिगम्बरत्व, असभ्यता और तमाम किस्म के बनैलेपन को रखते हुए भी विश्वास की उस सीमारेखा को नहीं छू पातीं- पाठक के तईं भी और लेखकीय ईमानदारी के संदर्भ में भी- जहां अभिमान का लोप हो जाता है; कलाकार अपनी ही प्रस्तर प्रतिमा को दूसरे के ताप में गला कर नई प्रतिमा का निर्माण करता है। वह अपनी रचनाओं के संदर्भ में आत्मकेंद्रितता और आत्ममुग्धता के मायने में अज्ञेय जी से चार कदम आगे हैं- इसीलिए चाह कर भी अपनी कविताओं में वह ऐसी संवेदनशीलता और मानवीयता नहीं ला पातीं जो किसी भी किस्म की क्रांति की बुनियादी मांग है। वह नारे लगाती हैं और दम्भी उद्घोषणाएं करती हैं, कि-'...संस्कृति की हर डगर/मेरे पास से होकर गुजरी है/पर मुझे छुआ नहीं/मैं अछूती ही रही/व्यवस्था की गिरती मुंडेर/बदलाव की जकड़ती नींव/सब मेरे ही रूप हैं/पर मैं सरकती नहीं...।' इसका आभास रमणिका जी को खुद है। तभी वह लिखती हैं- '...लेकिन मेरा पानी कभी खून से/सना नहीं/पर आज/मेरी आंखों का पानी/कहीं बचा नहीं।' अंत में वह आत्मप्रेम के उस स्तर तक जा गिरती हैं जहां कविता की सामाजिक जिम्मेदारी का ताना-बाना छिन्न-भिन्न हो जाता है-'...मैंने जिंदगी भर/अपने को ही प्यार किया है/इसलिए लिख रही हूं यह प्रेम-पत्र/अपने को संबोधित कर/'मेरी प्रिय जिंदगी'/तू अकेली नहीं/'तू' अपने साथ है/तू-/अपने बूते है...।'[12]

रमणिका जी की कविताओं की यह बुनियादी प्रवृत्ति जिसे ऊपर रेखांकित किया गया है, उसकी छाप अगर उनके जीवन पर है तो पूरे आंदोलन पर भी जिसका उन्होंने नेतृत्व किया, उन्होंने चलाया। इसीलिए और सिर्फ इसीलिए इतने लंबे जीवनकाल के संघर्ष की परिणति उस मोहभंग में होती है जो अन्यथा कलाकार की ईमानदारी के सांचे में ढल कर और प्रतिबद्ध हो सकती थी। 'व्यवस्था' में यह भाव बड़ी

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551| Peer Reviewed & Referred Journal |

| Volume 10, Issue 2, March 2023 |

शिद्दत से गूंजता है-'…तब/व्यवस्था छोड़ देती मुझे/भीड़ में लाकर खड़ा कर देती/पर तब तक/या तो भीड़ बिखर गई होती है/या मैं भीड़ से निकल जाने का रास्ता/खोजता/गुम हो जाता हूं।'

रमणिका गुप्ता ने सबाल्टर्न विषयों पर ढेरों कविताएं लिखी हैं। ये विषय दरअसल उनके जिए हुए का ही हिस्सा रहे हैं। चाहे वह झारखंड अंदोलन हो या कच्छ का, उन्होंने कविता के नाम पर दरअसल वह पूरी दास्तान लिखी है जो इन आंदोलनों के नायकों और नेतृत्व से लेकर इनकी सफलता और असफलता तक जाती है। इसीलिए झारखंड, कच्छ और विस्थापन पर लिखी कविताएं कविता नहीं रह जातीं। ये उस संघर्षकामी इतिहास का एक जीवंत हिस्सा बन जाती हैं जिसे गद्य में लिखा जाए तो कई पन्ने रंगने पड़ेंगे। हालांकि, शिल्प के स्तर पर देखें तो ये सपाटबयानियां ही हैं जिसमें दरअसल खुद को इन आंदोलनों की मार्फत प्रक्षेपित करने की कोशिश की गई है। इनमें एक भाव है कि देखो, हमने कितनी लड़ाइयां लड़ी हैं। कर्पूरी ठाकुर से लेकर जार्ज फर्नांडीज जैसे नेताओं के क्रांतिकारी किस्सों से भरी ये कविताएं अपने आप में कोई उद्देश्य पूरा नहीं कर पातीं। सिर्फ एक सूचना भर, कि ऐसा भी हुआ था। इस किस्म की रचनाओं के साथ एक सबसे बड़ा खतरा यह होता है कि शुरुआत तो रचना से होती है, लेकिन अंततः पूरा लेखन एक ठोस संरचना में ढल जाता है जहां उड़ने की न्यूनतम गुंजाइश होती है। आपको जो बताया जा रहा है आप उसे सुन भर लेते हैं। इन्हें कविता तो कम से कम नहीं कहा जा सकता। इनमें कई हैं। दरअसल, यह उस जिद से उपजी हैं कि मुक्ति के जितने भी अध्याय हैं उन सब पर रचना खड़ी की जा सकती है। यह कविता के साथ तो अन्याय है ही, उन मुक्ति आंदोलनों के साथ और उससे जुड़ी जनता के साथ भी है जो अमूमन इस किस्म की रचनाओं में परिधि पर ही रहती है। यही अंतर भुगते हुए और लिखे हुए के बीच होता है जो रमणिका जी के यहां सिरे से नदारद है। वे इलियट के ढांचे में फिट नहीं बैठतीं। इसीलिए रमणिका गुप्ता को अच्छा रचनाकार, कम से कम कविता के मामले में नहीं कहा जा सकता। यह कहने का खतरा उठाना होगा, ताकि कविता अपने तमाम उपादानों के साथ बची रह सके।[13]

किसी भी रचना के कविता होने की एक बुनियादी शर्त यह है कि उसमें जितना कहा गया है उससे ज्यादा अव्यक्त रह जाए, छूट गया हो। वह धीरे-धीरे अपने पाठक पर खुले, ठीक प्याज की परतों की भांति। एक मायने में ठीक भी है कि रमणिका गुप्ता अपनी कलम को कविता बनाने के लिए बाध्य नहीं करतीं, लेकिन दिक्कत यह है कि उनकी कलम से कविता फिर गाहे-बगाहे ही निकलती भी है। एक कविता का जिक्र जरूर किया जाना चाहिए जो वाकई उनकी तमाम रचनाओं में अपील करती है। 'रीता की बेटियां' एक अच्छी कविता इस मायने में कही जा सकती है कि इसमें आत्मानुभव का अतिक्रमण किया गया है। रीता की बेटियां ब्रूनो की बेटियां नहीं हैं- ऐसा कह कर एक वर्गांतर को दिखाया गया है जहां चीजें अपने आप खुलती जाती हैं। फिर और कुछ कहने की खास आवश्यकता नहीं रह जाती। यह सादृश्य निरूपण है, दो जीवन स्थितियों के बीच जहां कल्पनाओं की सीमा घर की छत तक ही है। उससे आगे जाने का विकल्प ही नहीं है। तमाम चिंताओं के साथ जी जाने की इतनी छोटी सी ख्वाहिश अपने आप में दर्दनाक है-'…न सपनों में जीती हैं/न कल्पना में उड़ती हैं/वे चिंता जरूर करती हैं/बस/जीना चाहती हैं।' ऐसी कविताएं शायद बहुत कम ही रमणिका जी ने लिखी हैं। वह वृत्तांतों में जाने से खुद को रोक नहीं पातीं। उनकी कविताएं उनके जीवन का वृत्तांत हैं।

1997 में रमणिका जी के प्रकाशित संग्रह 'आदिम से आदमी तक' की सारी कविताओं को पढ़ें तो यह बात साफ हो जाती है। 'सोलहवीं शती के प्रेतों का षडयंत्र', 'गुलाम आदमीः रोम के गुलाम', 'आम आदमी का चेहरा इतिहास के वरक पर उभरा', 'बुद्ध की यात्रा' आदि कविताएं वृत्तात्मक हैं और संग्रह के शीर्षक को चरितार्थ करती हैं। आदिम से आदमी होने तक के नृतत्ववादी सफर को कविताओं के माध्यम से रमणिका जी ने बड़े अनगढ़ तरीके से व्यक्त किया है। वह साम्राज्यवादी साजिशों की बात करती हैं, किसी प्रमथ्यू का आवाहन करती हैं, धर्म के पाखण्ड का खुलासा करती हैं तो अयोध्या में बाबरी मस्जिद विध्वंस की निंदा करती हैं- ऐसा कुछ भी नहीं है जिसमें उनकी सक्रियता एक राजनैतिक कार्यकर्ता होने के नाते न रही हो और वह कागज पर न उतरा हो, लेकिन वही बात कि एक चीज जो हरेक रचना में अखरती है वह है उसकी सोद्देश्यता और शिल्प का अभाव। हम जब रचना की सोद्देश्यता की बात करते हैं तो इसका अर्थ उसके सामाजिक सरोकार से उतना नहीं होता है जितना रचना में उसका प्रतिबिंबित होना होता है- भाषा और शिल्प के माध्यम से। रमणिका जी एक कुशल पत्रकार की भांति तथ्यों को परोस कर रख तो देती हैं, लेकिन उनमें एक कारीगर की भांति संयोजन नहीं बिठा पातीं और इस कारण से जो भी कुछ कहने की मंशा है वह शब्दों के जंगलात में दब कर रह जाती है। दूसरे, वे अपनी कविताओं में बार-बार बदलाव और मुक्ति के संदर्भों को रेखांकित करती हैं, लेकिन दीगर बात यह कि मुक्ति के संदर्भ में ही उनकी कुछ कविताएं मसलन 'पुतले' भ्रम पैदा करती है। यह इसी दौर की कविता है और अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है। आप देखेंगे कि किस तरीके से आंदोलन को एकांगी बनाने का आभास जीवन के अंतिम क्षणों में खुद नेतृत्व को भी होता ही है-'…आजादी बन जाती है ग्रंथि/हम एक खोल से दूसरे खोल में चले जाते हैं/फिर नारे लगाते हैं/हम आजाद होकर रह नहीं पाते/पूजते रहते हैं/पुतले।' यह एक आत्मस्वीकार है और लेखक की ईमानदारी का सबसे ज्वलंत उदाहरण, जो अमूमन आंदोलनों से जुड़े लेखकों की किन्हीं विशिष्ट ग्रंथियों के कारण उनमें नदारद होता है।[14]

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551| Peer Reviewed & Referred Journal |

| Volume 10, Issue 2, March 2023 |

इसी दौर की एक कविता है जो सफदर हाशमी पर लिखी गई है। 'तुम्हारी शहादत रंग लाएगी' भी अप्रकाशित ही है। पांच दशक लंबे राजनैतिक जीवन के बाद यह स्वीकार करना कि आजादी के सही मायने दरअसल खोल बदल देने से ज्यादा कुछ नहीं हैं और हर आजादी के बाद पुतलों की पूजा ही नियति है- इसी की अनिवार्य परिणति सफदर पर लिखी कविता में होती है कि, '...एक रोशनी बुझ गई/पर कितने ही मन कर गई रौशन/एक चिराग गुल हो गया/पर जल उठी हैं कितनी शमाएं...।' यहां पूरे पांच दशक की कविता और कवियित्री की सोच में पैराडाइम शिफ्ट आता है। 1962 में प्रकाशित 'गीत-अगीत' में 'जिंदगी' नामक कविता में रमणिका जहां लिखती हैं- '...जिंदगी/सिगरेट के अधजले टुकड़े-सी/बुझा-बुझा धुआं फेंकती...।' यह नरेश मेहता का आत्मगत मनोविश्लेषणवादी मुहावरा है जो आज की तारीख में 'कितनी शमाओं' में तब्दील हो चुका है। अब लाखों-करोड़ों जिंदगियों की नियति को बदल डालने का उपादान समाज से ही आएगा न कि किसी नेतृत्व के सिगरेट के धुएं से। कहा जा सकता है कि पहले जहां रमणिका गुप्ता अपनी कविताओं में अपनी ही चेतना की ओर यू-टर्न लेती रहीं, अब वे चेतना को सार्वजनिक कर वहीं से प्रेरणाएं समेट रही हैं। यह खुद के चुक जाने के बाद का एक व्यापक आशावाद है जो 'गीत-अगीत कौन सुंदर है' जैसे सवाल नहीं उठाता; वह जानता है कि इस सवाल के जवाब में सिर्फ खोल ही मिले हैं और नचिकेता खुद पुतले में तब्दील हो गया है। वह सीधे जन-कविता की बात करता है, बगैर किसी लाग लपेट के, पहले से ज्यादा मानवीय, संवेदनशील और सुंदर मुहावरों में।

रमणिका जी ने हिंदी के अलावा मैथिली में भी कविताएं लिखी हैं। कविताओं को पढ़ने पर ऐसा लगता है कि जैसे उनका सौंदर्यबोध और बिंब वास्तव में मैथिली भाषा में ही निवास करते हैं। हिंदी की तुलना में रमणिका जी की मैथिली कविताएं ज्यादा सुंदर और अपीलिंग हैं। हालांकि, खुरदरापन और अनगढ़ता इनमें भी जस की तस है, लेकिन प्रतिमान खांटी देशज हैं जो लोगों से जाकर जुड़ते हैं। 'रांची के बाहर करिया पहाड़' को 'ऊज्जर-ऊज्जर बदरी संग बतियौते' देखना हिंदी में संभव नहीं हो सका है। शायद यह हिंदी की अपनी सीमाएं हों और मैथिली का विस्तार; या और कुछ भी कह लें, पर रमणिका जी हिंदी से बेहतर मैथिली की कवियित्री हो सकती थीं। बाबा नागार्जुन ने भी तो हिंदी और मैथिली दोनों में ही कटहल के फूल खिलाए हैं फिर रमणिका जी से उम्मीद करना ज्यादती नहीं कि वे नागार्जुन की परंपरा को आगे बढ़ाएंगी। यहां इस पर बात करना विस्तार से संभव तो नहीं है कि आखिर क्यों रमणिका गुप्ता की मैथिली में लिखी कविताओं को उतनी स्पेस नहीं मिल सकी, लेकिन यह अवश्य कहा जा सकता है कि यदि वे हिंदी को छोड़ मैथिली पर ही ध्यान केंद्रित करतीं तो शायद एकाध अच्छी कविताएं उनकी कलम से निकल सकती थीं। दूसरे, उनके जैसा बड़ा नाम जुड़े होने का फायदा इस लुप्त होती भाषा को भी मिल पाता।[10]

कुल मिला कर रमणिका गुप्ता के काव्य-कर्म को दो हिस्सों में बांटा जा सकता है। एक वह जो उनके राजनैतिक जीवन से उपजा है और दूसरा जो उनके राजनैतिक संपर्कों से निकला है या उन्हें समर्पित है। राजनैतिक संपर्कों का अर्थ मोटे तौर पर उनके अंतरंग संबंधों और हादसों से ही लगाया जाना चाहिए। प्रेम कविताओं के मामले में भी रमणिका जी कोई बहुत प्रभावशाली लेखन के संकेत नहीं छोड़ती हैं चूंकि अधिकतर में रूहानी स्तर की पहुंच नहीं है। देह से आखिर कितनी दूर तक जाया जा सकता है? यह एक ऐसा प्रतिमान है जो अंततः शुष्क हो जाता है कई बार पेरे हुए ईंख की भांति। यही बात आंदोलनों से जुड़ी राजनैतिक कविताओं में भी है। वह इससे अलग लेखन को कलावादी मानती हैं और 'कला कला के लिए' के फासीवादी तमगे से वे अपने पूरे लेखकीय जीवन के दौरान बचने की कोशिश में रहीं। इस रूढ़ हो चुके नारे की छाप ने उनकी कविताओं को, शुरुआती दौर की छोड़ दें तो, शुष्क बना डाला है, चाहे वह कितना भी प्रकट यथार्थ हो। यह एक संकेत है समकालीन कवियों के लिए, एक संदेश भी कि स्वाभाविक रूप से आ रही कला को वर्जित करने के अपने खतरे होते हैं और बड़े होते हैं। भौतिकवाद को उसके शाब्दिक अर्थ में क्रियान्वित करना बहुत मुश्किल है और रमणिका गुप्ता ने आजीवन इसे, कम से कम अपनी रचनाओं में घोल दिया। वह सही अर्थों में एक कम्युनिस्ट कवियित्री बन कर रह गईं। उन्हीं के शब्दों में-'...चरैवेति-चरैवेति का मंत्र/दोहराते-दोहराते/एक दिन वह/बन गया आदम/वह बन गया आदम![8]

परिणाम

लंबे समय से बीमार रही रमणिका गुप्ता का निधन हो गया. उनकी बीमारी की हालत में मैं उनसे कई बार मिलने गया और यह महसूस होता था कि वह और जीना चाह रही हैं. थोड़ा बहुत भी ठीक होती तो भिड़ जाती अपने कामों में, समय पर मैगजीन युद्ध रत आम आदमी आना है. कौन सा काम कैसा हो रहा है? एक तरह से उन्हें अपने जाने का भी एहसास हो चुका था. क्योंकि उमर उनकी काफी हो रही थी. वह अपने तमाम राइटिंग्स और स्पीच को इकट्ठा कर रही थी. इसके प्रकाशित करने की तैयारी में थी. शायद वह अब तक प्रकाशित भी हो गई होगी.

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551| Peer Reviewed & Referred Journal |

| Volume 10, Issue 2, March 2023 |

बहुत सारे काम वे जल्दबाजी में करना चाह रही थी. हर जगह वह आप अपनी उपस्थिति देना चाहती थी. बता दूं कि रमणिका गुप्ता ने अपने कैरियर की शुरुआत हजारीबाग बिहार. अब झारखंड में है, से शुरू की थी. परिवार से विद्रोह करते हुए उन्होंने कोयला मजदूरों के लिए आंदोलन जारी रखा और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी मार्क्सवादी से वह विधायक चुनी गई. उनके जज्बे और साहस की हमेशा तारीफ में होती थी. इसके साथ साथ उन्होंने अपना साहित्यिक काम भी जारी रखा. वह हजारीबाग से ही युद्ध रात आम आदमी पत्रिका निकालती थी. शुरू में यह त्रैमासिक थी.उन्हें अपने नाम का बेहद मोह था जैसा कि सभी को होता है. लेकिन वह उसे प्रजेंट करने में कभी भी संकोच नहीं करती थी. उन्होंने अपने जीते जी रमणिका फाउंडेशन बनाया और खुद उसकी संस्थापक सदस्य बनी. रमणिका फाउंडेशन के मार्फत वे कई विधाओं में पुरस्कार भी दिया करती थी. पत्रिका का प्रकाशन भी रमणिका फाउंडेशन के माध्यम से ही होता था.उन्होंने आदिवासी मुद्दों पर जमकर लिखा और इस पर लिखने वालों को आगे भी बढ़ाए. इसी प्रकार वे दलित मुद्दों पर भी काफी लिखा करती थी और दलित लेखकों को प्रमोट करने का श्रेय उन्हें जाता है. उनकी कविताएं और कहानियां चर्चित रही हैं खासकर उन की एक कहानी बहू जुठाई बेहद चर्चित रही है. यदि मौका मिले तो आप इस कहानी को जरूर पढ़ें.[7]

वे स्त्री मुद्दों को उठाने वाली देश की अग्रणी महिलाओं में शुमार की जाती थी. उनकी तमाम रचनाओं में महिला वादी सोच स्पष्ट दिखाई पड़ती थी. उनकी आत्मकथा हादसे बेहद चर्चित रही. उन्होंने अपने अंतरंग संबंधों और तमाम अनुभवों को इस आत्मकथा में साझा किया था. जिसके कारण वह विवादों में भी घिरी थी.मेरा जब भी दिल्ली जाना होता मैं रमणिका जी के पास जरूर आता और प्रभावित था कि वे एक बुजुर्ग महिला होने के बावजूद बेहद सक्रिय थी. रात को केवल 4 या 5 घंटे सोती, बाकी समय लिखने पढ़ने में जाता. उनकी पत्रिका का विशेषांक मल मूत्र ढोता भारत के लिए मैं कई बार दिल्ली गया और इस काम में मैंने मदद की. इसके बाद मैंने पिछड़ा वर्ग विशेषांक संपादन का जिम्मा लिया और क़रीब 4 साल की मेहनत के बाद यह अंक मार्केट में आया. इस बीच मुझे कई बार रायपुर से दिल्ली का दौरा करना पड़ा. तमाम लोगों से इंटरव्यू एवं आलेख मंगाए गए. रचनाओं की छटनी और प्रूफ चेकिंग. एक बहुत बड़ा काम था. यह अंक दो भागों में प्रकाशित हुआ. एक बार की घटना मुझे याद आ रही है रमणिका जी को जब पता चलता कि कोई दिल्ली के बाहर से लेखक या लेखिका आई हैं. तो उन्हें फोन कर बुला लेती और गपशप मारते हैं. कुछ लिखना पढ़ना होता. इसी दरमियान कंवल भारती जी को उन्होंने फोन पर बुलवाया और उन्होंने कहा कि भारती जी अब आप आ जाइए शाम का खाना खाएंगे कुछ रम शम पिएंगे. कंवल भारती जी ऑटो में तुरंत डिफेंस कॉलोनी स्थित रमणिका जी के निवास पर आ गए. एक-दो दिन पहले से मैं भी वहां पर था. जैसे ही कंवल भारती आए तो उन्होंने स्वागत सत्कार किया और बातचीत करने लगे. [6]कंवल भारती जी ने कहा कि आपने मंगवा लिए (इशारा रम की तरफ था) तो रमणिका जी तुरंत कहने लगी कि नहीं हम तो आजकल लेना बंद कर दिए हैं और यहां पर पिलाना भी बंद हैं. तो कंवल भारती जी तमक गए बोले कि आप ने मुझे बुलाया है, यही बोल कर, इसलिए मैं आया हूं. सहमति के लिए रमणिका जी ने मुझसे हामी भराने की कोशिश की, तो मैंने कहा कि आपने तो कहा था कि आइए कुछ रम सम पिएंगे. रमणिका जी ने कहा कि ऐसा तो मैंने नहीं कहा था. उसके तुरंत बाद कंवल भारती जी नाराज हो कर चले गए. वह कई बार अपने कहे बातों को बदल दिया करती थी और कभी भी अचानक बहुत पैसे वाली हो जाती. तो कभी वे बिल्कुल गरीबों से व्यवहार करती. वह अक्सर कहां करती थी कि मेरे बेटे की कंपनी(जो अमेरिका में है) का टर्नओवर बिहार सरकार के टर्नओवर से ज्यादा है. उनका यह फाउंडेशन उन्हीं की मदद से चल रहा है. उनके यहां जो कर्मचारी काम करते थे उनमें से एक दिनेश को छोड़कर कोई भी कर्मचारी साल 6 महीना से ज्यादा नहीं टिक पाता था. वे रगड़ कर काम लेती थी और किसी भी कर्मचारी को फांके मानने का मौका नहीं देती थी. इसलिए संपादक से लेकर टायपिस्ट टिक नही पाते.[5]

कोई कर्मचारी यदि उनके टेलीफोन से अपने रिश्तेदारों से फोन भी करता तो वह उनकी सैलरी से फोन के बिल के पैसे काट लिया करती. प्रोफेशनल तो इतनी थी कि आप अंदाजा नहीं लगा सकते. यदि आप जानेंगे कि वे एक दलित आदिवासी और महिला वादी महिला थी. लेकिन इमोशनल तो बिल्कुल भी नहीं थी. कई बार उनके महिला वादी होने पर भी संदेह होता.

ऐसा ही एक वाक्या मुझे याद आ रहा है. एक नेपाली जोड़ा उनके यहां निवास करता था. उसकी पत्नी घर पर झाड़ पोछा खाना वगैरह बनाने का काम करती थी और पति कहीं किसी कंपनी में चौकीदार था. इसी दरमियान बता दूं मैं की झारखंड हजारीबाग निवासी रमणिका जी के पुराने मित्र का बेटा आईएएस परीक्षा की तैयारी करने के लिए रमणिका का फाउंडेशन में साल भर से ठहरा हुआ था. नाम तो मुझे याद नहीं आ रहा है. लेकिन वह भूमिहार परिवार का था ऐसी जानकारी रमणिका जी ने दी थी. वह लड़का पढ़ाई कम और हीरोगिरी ज्यादा करता था. अक्सर रमणिका फाउंडेशन में आने वाली महिलाओं के पीछे पीछे घूमता रहता और नेपाल से आए उस नेपाली चौकीदार की पत्नी के भी पीछे-पीछे वह घूमा करता था. बाद में पता चला कि इस लड़के ने उस नेपाली महिला के साथ धमकी देकर जबरदस्ती संबंध बनाया और वह महिला प्रेग्नेंट हो गई. यह जानकारी उस नेपाली महिला के पति को नहीं हो पाई. क्योंकि वह आधी रात चौकीदारी की ड्यूटी से फाउंडेशन में आकर रुकता था यहां के एक छोटे से कमरे में नेपाली

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551| Peer Reviewed & Referred Journal |

| Volume 10, Issue 2, March 2023 |

जोड़े को निवास हेतु जगह दिया गया था. रमणिका फाउंडेशन में हंगामा मच गया. जैसा की होना चाहिए था. इस मामले में रमणिका जी के द्वारा पुलिस में रिपोर्ट लिखा जाना चाहिए था. लेकिन हुआ इसके उलट, वह महिला लगातार रोती रही और पुलिस में जाने की कोशिश करती रही. लेकिन रमणिका जी ने उन्हें डांट कर रोका और उस मामले मैं लीपापोती कर के उसे रफा-दफा कर दिया गया. एक प्रकार से रमणिका जी ने उस भूमिहार बलात्कारी लड़के को बचाने की पूरी कोशिश की जिसमें वह पूरी तरह सफल हो गई. उनके इस व्यवहार से उनके महिला वादी होने पर संदेह होता रहा है मुझे. मैं नहीं समझ पाया कि वह अपने लिखने, कहने और विचारधारा के उलट कैसे व्यवहार कर सकती हैं.जैसा कि मैंने पहले बताया है कि वह फ्रंट में रहने के लिए कुछ भी किया करती. एक बार उन्होंने मुझे फोन किया संजीव जी आमिर खान से संपर्क करो. उन्होंने जो सत्य में जयते पर सफाई कामगारों के लिए एपिसोड बनाया है. उसमें मुझे भी ले ले मैंने भी तो मल मूत्र ढोता भारत पत्रिका विशेषांक निकाला था. इस तरह वे अपने असिस्टेंट उसे फोन करवाती. जिस पर में उन्हें कोई संकोच नहीं था. वह किसी भी संपादक को यदि लेख भेजती, तो उन्हें फोन जरूर करवाती है. जैसे उन्होंने यदि 10 संपादकों को लेख भेजा है.[4] तो अपने असिस्टेंट से उन्हें फोन करने के लिए कहती है और वे स्वयं बात करती. वे जिस प्रकार लाल सलाम बोलने में संकोच नहीं करती थी ठीक उसी प्रकार वह जय भीम बोलने में भी संकोच नहीं करती थी. डॉक्टर अंबेडकर के द्वारा किए गए प्रयासों को वह खुले दिल से स्वीकार करती थी और उन्हें मंचों पर साझा भी करती. सक्रियता उनकी सबसे बड़ी खूबी रही है वह बेहद प्रोफेशनल और सक्रिय महिला थी. मौत के कुछ दिनों पहले भी वह मंचों पर देखी गई और जज्बे के साथ अपने बातों को भी रखती थी. उनका जाना निश्चित रूप से साहित्य और विचारधारा की दुनिया में एक बड़ी खाई है जिसकी क्षतिपूर्ति आसान नहीं है.[3]

हिंदी की लोकप्रिय साहित्यकार और सामाजिक कार्यकर्ता रमणिका गुप्ता का मंगलवार को निधन हो गया. उन्होंने दिल्ली के अपोलो अस्पताल में दोपहर तीन बजे अंतिम सांस ली. वह 89 वर्ष की थीं.22 अप्रैल 1930 को पंजाब में जन्मी रमणिका ने आदिवासी व दलित साहित्य को नया आयाम दिया. वह साहित्य, समाज सेवा और राजनीति कई क्षेत्रों से जुड़ी हुई थीं. वह सामाजिक सरोकारों की पत्रिका 'युद्धरत आम आदमी' की संपादक थीं. उन्होंने स्त्री विमर्श पर बेहतरीन काम किया.वह देश की वामपंथी प्रगतिशील धारा की प्रमुख रचनाकार थीं. उन्होंने मजदूर आंदोलन से अपने साहित्य को धार दी. उन्होंने झारखंड के हजारीबाग के कोयलांचल से मजदूर आंदोलनों को साहित्य के जरिए राष्ट्रीय फलक पर पहुंचाने का काम किया.नारी मुक्ति के साथ झारखंड समेत देश के आदिवासी साहित्यिक स्वर को व्यापक समाज में लाने के उनके विशिष्ट योगदान को भुलाया नहीं जा सकता.उनके आदिवासी एवं दलित अधिकारों से लेकर स्त्री विमर्श पर कई किताबें, कविता संग्रह प्रकाशित हो चुकी हैं. रमणिका गुप्ता की आत्मकथा 'हादसे और आपहुदरी' बहुत लोकप्रिय हैं. वह कई पुरस्कारों से सम्मानित हो चुकी हैं.उनकी मशहूर कृतियों में 'भीड़ सतर में चलने लगी है', 'तुम कौन', 'तिल-तिल नूतन', 'मैं आजाद हुई हूं', 'अब मूरख नहीं बनेंगे हम', 'भला मैं कैसे मरती', 'आदम से आदमी तक', 'विज्ञापन बनते कवि', 'कैसे करोगे बंटवारा इतिहास का','दलित हस्तक्षेप', 'निज घरे परदेसी', 'सांप्रदायिकता के बदलते चेहरे', 'कलम और कुदाल के बहाने', 'दलित हस्तक्षेप', 'दलित चेतना- साहित्यिक और सामाजिक सरोकार', 'दक्षिण- वाम के कठघरे' और 'दलित साहित्य', 'असम नरसंहार-एक रपट', 'राष्ट्रीय एकता', 'विघटन के बीज' प्रमुख हैं.उनका उपन्यास 'सीता-मौसी' और कहानी संग्रह 'बहू जुठाई' भी खासा लोकप्रिय रहा.[2]

सामाजिक आंदोलनों के लिए पहचानी जाने वाली रमणिका विधायक भी रहीं. उन्होंने बिहार विधानपरिषद और विधानसभा में विधायक के रूप में काम किया है. वह इसके अलावा ट्रेड यूनियन नेता के तौर पर भी काम कर चुकी हैं. वह चुनावी राजनीति से अलग होने के बाद भी मजदूर यूनियन से जुड़ी रहीं.

निष्कर्ष

हादसे' के अंश-

नाच नचनिया नाच

ऐसे अनेक मौक़े आए जब अपनी बात मनवाने के लिए मुझे सदन के 'वैल' में आना पड़ा या टेबल पर चढ़कर नारेबाजी करनी पड़ी. मुझसे पहले आमतौर से कोई स्त्री सदस्य ऐसा नहीं करती थी, पर मैंने विरोध जताने के लिए इस परंपरा की सदन में शुरूआत की अन्यथा हमारी बात कोई नहीं सुनता था.बहुत थेथर (बेशर्म) भी होना पड़ता है स्त्री सदस्य को. पुरुष सदस्य भीरत-भीतर जुझारू औरतों को बर्दाश्त नहीं करते. मुझे याद है एक बार पूरा विपक्ष सदन के 'वैल' में था, कर्पूरी जी भी थे, मैं भी थी. मैं टेबल पर चढ़कर अपनी बात कह रही थी क्योंकि

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551| Peer Reviewed & Referred Journal |

| Volume 10, Issue 2, March 2023 |

नीचे खड़े होने पर भीड़ में भिंच जाने का ख़तरा था. इसी-बीच सत्तादल ने अपनी रणनीति बदली. वे भी सीटों से उठकर विपक्षी सदस्यों के गिर्द खड़े होकर नारेबाजी करने लगे. गर्मागर्म बहस शुरू हो गई और इसी बीच रघुनाथ झा (जो उन दिनों काँग्रेस पार्टी में थे. बाद में वे समता पार्टी के अध्यक्ष और सांसद बने और अभी राजद के सांसद हैं) मुझे संबोधित कर ताली बजा-बजाकर कहने लगे-'नाच नचनिया नाच.'मैं टेबल से नहीं उतरी. अगर मैं टेबल से उतर जाती और नारेबाजी बंद कर देती तो उनकी मंशा पूरी हो जाती.मैंने थेथर होकर नारेबाजी और तेज़ कर दी. विपक्ष के सदस्य नारेबाजी में मेरा साथ दे रहे थे. सत्तापक्ष ताली पीटता रहा, फब्तियाँ कसता रहा. बाद में अध्यक्ष के आदेश से ऐसी सब बातें कार्रवाई से हटा दी गईं पर मेरी स्मृतियों से इन्हें हटाना मुश्किल है.[11]

अध्यक्ष ने सदन के स्थगन की घोषणा कर दी तो सदन के भीतर सत्ताधारी व विपक्ष के सदस्यों के बीच काफी देर तक अनौपचारिक बहस चालू रही. कर्पूरी जी हमेशा मेरा हौसला बढ़ाते थे, हालाँकि मुंशीलाल राय मुझे बेहद हतोत्साहित करने का प्रयास करते थे. लालू यादव जी उन दिनों हमारी बगलवाली बेंच पर बैठते थे. उसी बेंच पर रामलखन यादव और नामधारी सिंह (जो आजकल झारखंड विधानसभा के अध्यक्ष हैं) बैठते थे.

रमणिका गुप्ता बिहार/झारखंड की विधायक और विधान परिषद सदस्य रही हैं

लालू जी मेरी मुख़ालफ़त नहीं करते थे. हाँ, उनके प्रिय साथी गणेश यादव (जो बाद में उन्हें छोड़ गए) मेरी बहुत मुख़ालफ़त करते थे. वृषिण पटेल भी गणेश यादव के साथ हो लेते थे. दरअसल मुंशीलाल राय भीतर से सदैव कर्पूरी जी के विरोधी रहे. वे उनके साथ रहकर उनके साथ घात करते थे. उन दिनों शिवनन्दन पासवान बहुत ईमानदार दलित नेता माने जाते थे. उन्हें कर्पूरी जी विधानसभा का उपाध्यक्ष बनाना चाहते थे लेकिन मुंशीलाल राय की लॉबी हिमांशु जी को उपाध्यक्ष बनाने की पक्षधर थी. हम लोग कर्पूरी जी के साथ थे. मैं जुझारू थी और वाचाल भी, इसलिए मेरा विरोध भी अधिक होता था. उधर श्रीबाबू (श्रीकृष्ण सिंह) का पुत्र नरेन्द्र मेरा विरोधी था चूँकि उसके पिता श्रीकृष्ण सिंह को मैंने अपनी यूनियन से निकाल दिया था. वह गोपाल सिंह से मिलकर मेरी मुख़ालफ़त करता था.प्रणव चटर्जी जब तक जीवित रहे, हमें पर्याप्त संरक्षण देते रहे, उसके बाद कर्पूरी जी काफी अकेले पड़ गए. उनके साथ विशाल जन-समर्थन था पर चंद तिकड़मी लोग उनसे चिढ़ते थे. कुछ लोग अपने को बहुत विद्वान समझते थे और इसलिए भी जलते थे कि वे अपनी विद्वता के बल पर कर्पूरी जी को मात क्यों नहीं दे पाते ? नेतृत्व के लिए विद्वता काफी नहीं होती. उसके लिए जोख़िम उठाने की क्षमता और प्रतिबद्धता का होना भी लाज़मी होता है. दरअसल, पार्टी के ये विद्वान-सामंत अधिक थे, विद्वान कम, जननायक तो बस एकमात्र कर्पूरी जी ही थे. उनके बाद बिहार को कोई जननायक नहीं मिला.[12]

यह तो शुक्र है कि लालूजी के रूप में बिहार को एक जननेता मिल गया नहीं तो बिहार कौरव-पांडव का युद्धस्थल बन गया होता या दस्यु-युग में बदल जाता. वैसे बिहार नरसंहारों की भूमि तो बन ही गया है पर यह शुभ है कि बिहार की जनता जाग गई है और उच्च जातीय, उच्चवर्गीय सामंती नेताओं को टक्कर दे रही है. यह विश्वास जनता के मंडल कमीशन के निर्णय से, लालू यादव और नक्सली आंदोलन की मिली-जुली शक्तियों के प्रभाव के कारण पाया है. आज़ादी के बाद छप्पन वर्ष तक राज करने वाली काँग्रेस दलित-पिछड़ी जनता में आत्मसम्मान और आत्मविश्वास नहीं जगा पाई थी.

> "मंडल के मामले में बिहार में लालू जी ने जो उच्चवर्गीय लोगों को ख़िलाफ़ अभियान चलाया उसमें उनके साथ दलित शामिल थे. हालाँकि बाद में पिछड़े और दलित अपने-अपने जाति समूहों की ताक़त बढ़ाने में जुट गए और पिछड़े या दलित का सामूहिक ढंग का जाति-विहीन आंदोलन गौण हो गया और जाति-उन्नयन का आंदोलन सशक्त होने लगा[14]"

सोशलिस्टों ने भी 'पिछड़े पावें सौ में साठ' का नारा देकर बिहार में अधूरी ही सही पर सामाजिक न्याय की प्रक्रिया तो शुरू कर ही दी थी लेकिन लोहिया जी के ही शब्दों में- 'एहतियात नहीं बरतने पर इस जातिनीति को पिछड़ों में दबंग जातियाँ हाइजैक कर लेंगी.' बिहार में यही हुआ. हालाँकि 'पिछड़े पावें सौ में साठ' में दलित शामिल थे पर व्यवहार में वे उपेक्षित ही रहे.[13]

मंडल के मामले में बिहार में लालू जी ने जो उच्चवर्गीय लोगों को ख़िलाफ़ अभियान चलाया उसमें उनके साथ दलित शामिल थे. हालाँकि बाद में पिछड़े और दलित अपने-अपने जाति समूहों की ताक़त बढ़ाने में जुट गए और पिछड़े या दलित का सामूहिक ढंग का जाति-विहीन आंदोलन गौण हो गया और जाति-उन्नयन का आंदोलन सशक्त होने लगा. पर यह तो मानना ही पड़ेगा कि इनमें आत्मविश्वास भरने का काम

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551| Peer Reviewed & Referred Journal |

| Volume 10, Issue 2, March 2023 |

लालू जी ने किया. लालू जी के खेमें में हालाँकि वही लोग अधिक गए जो पहले कर्पूरी जी का विरोध करते थे. बाद में लालू जी स्वयं ही कर्पूरी जी के खेमे में शामिल हो गए. उनके साथी भी उनके साथ कर्पूरी जी के खेमें में चले गए लेकिन कई उन्हें छोड़ भी गए.[14]

संदर्भ

1) https://en.wikipedia.org/wiki/Ramnika_Gupta
2) ↑ "संग्रहीत प्रति". मूल से 17 अगस्त 2019 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 1 अप्रैल 2020.
3) ↑ रमणिका, गुप्ता (२०१५). आदिवासी अस्मिता का संकट. नई दिल्ली: सामयिक प्रकाशन.
4) रमणिका गुप्ता, हादसे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2010, पृ-15-16
5) वही, पृ- 17
6) वही, पृ- 18
7) वही, पृ- 24-25
8) वही, पृ- 26
9) वही, पृ- 27
10) वही, पृ- 52-54
11) वही, पृ- 74-78
12) वही, पृ- 186-190
13) वही, पृ- 19
14) वही, पृ- 250

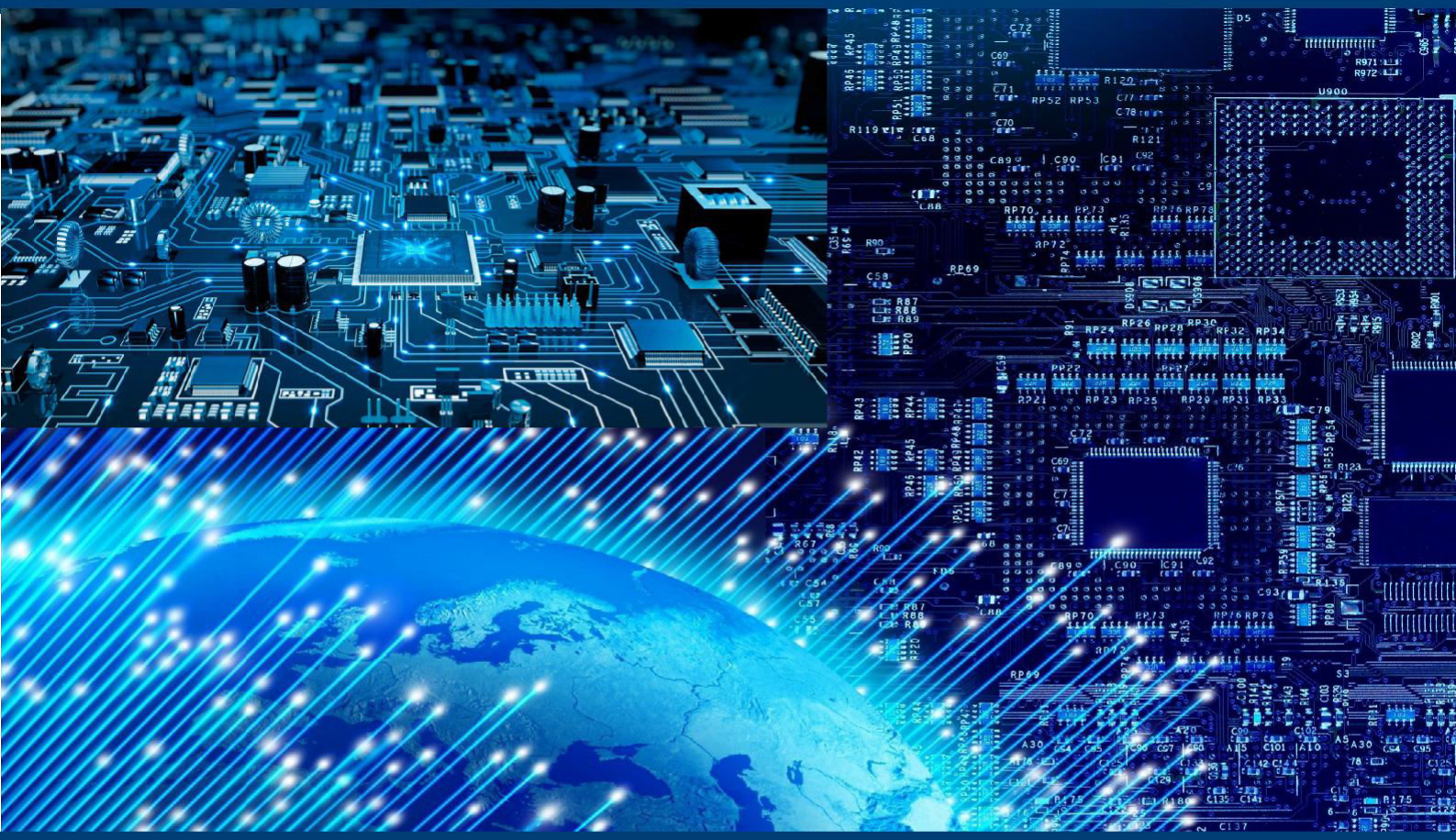

International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| Mobile No: +91-9940572462 | Whatsapp: +91-9940572462 | ijarasem@gmail.com |